RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 अंक : 04 कुल पृष्ठ : 36 4 अप्रेल, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

थिरथी पत छत्रीकुल भूसण,
रणसूरो पूरो गुणगोत।
देसधणी आरजकुल गौरव,
भूप भलो सांगो तपजोत।।

रोम-रोम सूरापण उफणै,
अंग-अंग कीरत कथ होय।
देवलोक नरलोक बिचरलै,
तो सो तु ही न दूजो कोय।।

महाराणा सांगा

संघशक्ति

4 अप्रेल, 2019

वर्ष : 56 अंक-04

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	06
साधना की प्रतिक्रियाएँ	स्वामी यतीश्वरानन्द	07
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	10
राणा सांगा	स्व. श्री सुरजनसिंहजी झाझड़	13
धर्म की दुर्दशा मत करो!	महात्मा श्री रामचन्द्र वीर	15
अपना जीवन दूसरों के हित के लिये हो	ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका	21
विचार-सरिता (द्विचत्वारिंशत् लहरी)	श्री विचारक	24
प्रेरक कथानक	संकलित	29
भाग्य व बुद्धि	संकलित	30
अंत मति सो गति	संकलित	31
अपनी बात		33

समाचार संक्षेप

लोकसभा चुनाव :

लोकसभा चुनाव की घोषणा हो चुकी है। 11 अप्रेल से 19 मई तक कुल सात चरणों में पूरे देश में मतदान सम्पन्न होगा। राजस्थान में दो चरणों में मतदान सम्पन्न होगा, 29 अप्रेल को तथा 6 मई को। 29 अप्रेल को प्रदेश की कुल 25 लोकसभा सीटों में से 13 सीटों पर मतदान होगा और 6 मई को शेष रही 12 सीटों पर मतदान होगा। 19 मई को अन्तिम चरण का मतदान सम्पन्न हो जाने के पश्चात 23 मई को मतगणना होगी तथा 3 जून तक नई सरकार बननी है। नई सरकार के लिये 90 करोड़ मतदाता अपनी राय मतदान के माध्यम से देंगे।

लोकतंत्र में चुनाव एक उत्सव की तरह माना गया है। उत्सव के अवसर पर चारों तरफ खुशियाँ ही खुशियाँ नजर आती हैं। ऐसा ही खुशनुमा वातावरण चुनाव के समय बने तभी यह उत्सव का रूप ले पाए। चुनाव के समय में हमारे यहाँ चहल-पहल तो बहुत रहती है पर इस चहल-पहल में वातावरण खुशनुमा नहीं बन पाता। दलगत और व्यक्तिगत छींटाकशी पूरे वातावरण को द्वेषपूर्ण प्रतिद्वन्द्विता में बदल देती है। राष्ट्र के विकास के लिये, सामाजिक सौहार्द्र के लिये, राष्ट्र के सुख-शान्ति के लिये दल की क्या नीति है और उसको लागू करने की क्या योजना है, यह प्रत्येक दल जनता को बताकर, उसकी व्यवहारिकता समझाकर मतदाताओं को आकर्षित करे, यह लोकतंत्र की स्वस्थ परम्परा बनती है। परन्तु आज हमारे देश में इसका नितांत अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रचार-प्रसार में आरोप-प्रत्यारोप ही चारों ओर सुनाई दे रहा है। देश के प्रमुख नेताओं के बोल भी इतने निम्न स्तर के हैं कि उनको अपशब्द की श्रेणी में भी गिना जा सकता है।

दल की नीतियों और उम्मीदवार के आचरण को आधार बनाकर यदि मतदान किया जाए तो लोकतांत्रिक व्यवस्था उत्तम राज्य व्यवस्था है। पर आज हम नागरिक भी क्या इस आधार पर मतदान करते हैं? नहीं। हम दलगत, जातिगत, क्षेत्रगत, व्यक्तिगत धारणाओं में जकड़े रहते हैं और उसी के अनुसार मतदान करते हैं। तभी आज लोकतंत्र में आम नागरिक को जो सुख और शान्ति का वातावरण मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। अर्थात् जो भी अभाव नजर आ रहा है, उसके कारण हम स्वयं ही हैं। आम नागरिक समझदार हो, राष्ट्र और समाज हित को पहचानने वाला और उसी के लिये कार्यरत हो, वहीं लोकतंत्र सफल होता है। हमने लोकतंत्र को अच्छी राज्य व्यवस्था मानकर अपना तो लिया, पर हम स्वयं को लोकतंत्र के सच्चे नागरिक नहीं बना सके।

इस लोकसभा चुनाव के अवसर पर हम राष्ट्र हित और समाज हित को ध्यान में रखकर, अच्छे आचरण के उम्मीदवार को आगे बढाने में सहयोगी बनने का प्रयास करें, यही हितकर है। पूर्व धारणाओं और अन्य प्रकार के बन्धनों से बाहर निकल कर मतदान करें तो स्वस्थ लोकतंत्र बनाने में सहयोगी बन पाएंगे।

दलित-आदिवासी संगठनों से संवाद :

हम अधिकतर गाँवों के निवासी हैं। आज से 50-60 वर्ष पूर्व हमारे अधिकांश गाँवों में सभी जातियों में परस्पर व्यवहार और वातावरण बड़ा सौहार्द्र पूर्ण था। पुरानी विकृत रूढियों के कारण छुआछूत का भाव तो था परन्तु अन्य व्यवहार इतना प्रेमपूर्ण था कि इस विकृत रूढी की उपस्थिति भी किसी प्रकार का दुराव उत्पन्न नहीं कर पाई थी। आज जिनको दलित वर्ग कहा जा रहा है, उस समय भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता रहा हो, लेकिन जब इस वर्ग की महिला हमारे घर आती थी, तो उससे छोटी उम्र की हमारी बहुएँ उनके पगे लगती थी, अर्थात् सासू या सम्मानीय बुजुर्ग महिला का मान दिया जाता था। पुरुष वर्ग के आपसी सम्बोधन में भी दादा-काका का ही व्यवहार था। हमारी परस्पर निकटता थी, जो आज नजर नहीं आती। *(शेष पृष्ठ 20 पर)*

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर भारतीय ग्राम्य आलोकान आश्रम बाड़मेर में 17 मई, 2018 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश)

इस शिविर का यह सातवां दिन है। शिविर में कुछ लोग नये हैं, कुछ लोग एकाधिक बार आए हुए भी हैं और बहुत बार आए हुए लोग भी हैं। फिर भी अब लग रहा है जैसे कि हम पीढ़ियों से, युगों से साथ ही रह रहे हैं। वातावरण के इस सौंदर्य को आँखों से नहीं देखा जा सकता। यह अनुभव का विषय है। जो हम अनुभव कर रहे हैं। हम संसार में रहते हैं, संसार में रहते जो दोष पनप जाते हैं, वे लेकर आते हैं, इसलिए कभी-कभी कुछ भूलें हो जाती हैं पर बहुत अच्छा लग रहा है कि सातवें दिन शिविर कितना सुन्दर बन गया है। कहीं-कहीं कोई आवाज आती है, थोड़ी और ठीक की जा सकती है। प्रात:कालीन जागरण के पश्चात और प्रार्थना से पहले थोड़ा और सहयोग करेंगे तो शिविर और सुन्दर बन जाएगा। वह सहयोग है, इस दौरान मौन रखें, कोई आवश्यकता नहीं है इस समय कुछ बोलने की, अत: अनावश्यक न बोलें। जागरण गीत अवश्य बोलें। शंख बजने के बाद मौन रखना बहुत सरल हो जाता है। प्रार्थना के बाद भी आवश्यक हो उतना ही बोलें। अनावश्यक न बोलें लेकिन आवश्यक अवश्य बोलें।

रामायण का एक प्रसंग है। रामचरित्र मानस के उत्तरकांड में यह वर्णन आता है। जब रावण के बेटे इन्द्रजीत ने भगवान राम को नागपाश का बाण लगाया तो नागों ने भगवान राम को बंदी बना लिया। नाग में जहर होता है। उस जहर के प्रभाव से भगवान राम होश खो बैठे। चिन्ता लगी कि अब क्या किया जाय। भगवान विष्णु के वाहन गरुड़ को बुलाया गया। गरुड़ तो नाग का शत्रु है, कोई दूसरा यह काम कर नहीं सकता। गरुड़ भी भगवान का वाहन है और इधर भगवान मूर्छित हैं। गरुड़ ने नागपाश खोल दिए लेकिन उसके मन में एक शंका पैदा हो गई कि मैं भगवान का वाहन हूँ और इधर भगवान स्वयं मूर्छित होकर पड़े हैं। इनको लोग भगवान कहते हैं जो कि लोगों के पाश काटते हैं और लोगों को मुक्त करते हैं। ये तो खुद ही बन्दी हो गए और इनको तो मैंने मुक्त किया है।

भगवान के साथ रहते हुए भी इस प्रकार की शंकाएँ हो सकती हैं। यह इस बात का दृष्टांत है कि हम लम्बे समय तक श्री क्षत्रिय युवक संघ के इस मार्ग के साथ रहते हैं, इसके बाद भी शंकाएँ रह सकती है। उन शंकाओं का निराकरण किया जाना चाहिए। गरुड़ नारद जी के पास गया और कहा कि मेरी एक शंका है। सभी राम को भगवान कहते हैं, मैं तो भगवान का वाहन ही हूँ पर राम का पाश मैंने काटा। संसार उनको भगवान कहता है, तब मेरी शंका यह है कि भगवान होकर भी वे अपने पाश को नहीं काट सकते। नारदजी ने कहा कि मैं तो स्वयं माया के प्रभाव में आकर शंकाएँ कर बैठता हूँ। आचरण मेरा बदल जाता है। मैं तो स्वयं ही निशंक नहीं हूँ। तब आपकी शंका का समाधान मैं नहीं कर सकता। आप अपनी शंका के निवारण हेतु ब्रह्माजी के पास जाइये।

जिसकी शंका होती है, उसे बैठना नहीं चाहिए, जब तक कि शंका का समाधान न हो जाए। गरुड़ अब ब्रह्माजी के पास गए। ब्रह्माजी से भी उसने वही प्रश्न किया। ब्रह्माजी ने कहा कि सृष्टि का विधाता हूँ, भगवान के आदेश से इस सृष्टिका सृजन करता हूँ। किन्तु जिस प्रकार रामजी को नागपाश ने बाँध लिया, मुझे भी कई बार शंकाओं के पाश बांध लेते हैं। इसलिए मैं भी आपकी इस शंका का समाधान नहीं करा सकता। समाधान किसको करवाना था, जो सदैव भगवान के पास रहता है। उत्तर देते हुए भी व्यक्ति सोचता है कि मैं किससे बात कर रहा हूँ। यह भी एक दृष्टांत है, हमारे लिये निर्देश है कि हम ध्यान रखें कि हम किससे बात कर रहे हैं। ब्रह्माजी ने गरुड़ जी को भगवान शिव के पास जाने की सलाह दी। भगवान शिव राम जी की उपासना करते हैं और भगवान राम शिव की उपासना करते हैं, इसलिए वे इस शंका का उत्तर दे सकते हैं।

गरुड़ जी अब भगवान शिव के पास गए, लेकिन उस समय भगवान शिव कैलाश पर्वत से उतरकर यात्रा पर जा रहे थे। गरुड़ जी ने प्रश्न पूछा तो भगवान शिव ने कहा कि ऐसे गंभीर प्रश्नों का उत्तर चलते-चलते नहीं

दिया जाता। ध्यान रहे कि भगवान शिव ने यह नहीं कहा कि मैं भी शंका में फंस जाता हूँ। भगवान शिव कभी नहीं फंसे। शंकाएँ उनको कभी हुई ही नहीं। वे शंकाओं का निवारण करने वाले थे। उन्होंने कहा-कभी फुर्सत में आओ हम बात करेंगे। गरुड़ जी ने पूछा कि तब मेरी शंकाओं का समाधान कैसे होगा? भगवान शिव ने गरुड़ जी से कहा कि तुम्हें लम्बे सत्संग की आवश्यकता है और अभी मैं बाहर जा रहा हूँ इसलिए तुम नीलगिरी पर्वत पर जाओ जहाँ काकभुशुण्डि जी पक्षियों को नित्य प्रति सत्संग सुनाया करते हैं, चाहे कोई सुनने वाला हो अथवा न हो। वहाँ सत्संग का लाभ लो।

काकभुशुण्डि जी भगवान राम के भक्त थे। 28 कल्पों तक जब भगवान राम का जन्म होता है तब तक वे अयोध्या में होते हैं। कभी कोई मुनि, कभी कोई संत, कभी कोई महात्मा उनके पास आते रहते थे। गरुड़ जी ने वहाँ नीलगिरी पर्वत पर जाकर देखा कि सत्संग चल रहा था। सुनने वाले अधिक नहीं थे पर सत्संग चालू था। गरुड़ जी जाकर एक कोने में बैठ गए। काकभुशुण्डि जी सत्संग सुना रहे थे और ध्यानस्थ होकर सुना रहे थे। बहुत समय बाद जब ध्यान भंग हुआ तो उनकी नजर गरुड़ जी पर पड़ी जो भगवान विष्णु के वाहन हैं। उन्होंने गरुड़ जी से निवेदन किया कि हे पक्षीराज! आप किस कारण से यहाँ पधारे? मुझे आज्ञा देते, मैं आ जाता। गरुड़ जी ने कहा कि मेरी कोई शंका थी, जिसके निवारण के लिये भगवान शिव ने मुझे आपके पास भेजा है। काकभुशुण्डि ने पूछा कि आपकी शंका क्या है, मुझे बताएँ, मैं प्रयत्न करूंगा उसके निवारण के लिये। गरुड़ जी ने बताया कि अब कोई शंका रही ही नहीं, आपके सत्संग से शंका का निवारण हो चुका है। अर्थात् सत्संग से शंकाएँ चली जाती हैं।

यहाँ काकभुशुण्डि जी नहीं हैं, न यहाँ गरुड़ जी हैं, मगर यहाँ सात दिन से सत्संग चल रहा है। जो लोग जागरूक हैं, अनेकों शंकाएँ लेकर आए हैं और श्रद्धा के साथ सुनते हैं, उनकी शंकाएँ नहीं रहती। और जो शंका रहित हो जाता है, वह शंकर बन जाता है। साधक बनकर आए हैं, हम भगवान बन सकते हैं, कैसे? सत्संग को गौर से सुनें, उसके अनुसार आचरण करें, खुले हृदय से स्वीकार करें कि ये शंकाएँ मेरी हैं, मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। तब आप ध्यान से सुन सकेंगे। खाली पात्र में ही कुछ भरा जा सकता है, पात्र पहले से अवांछित सामग्री से भरा पड़ा है, उसमें कुछ भरा नहीं जा सकता। ध्यान और जिज्ञासा से सुनें तो हर प्रवचन में शंकाओं का समाधान है। अनेकों संवाद और चर्चाएँ होती हैं, यदि हम चाहते हैं तो उनमें हमारी समस्त शंकाओं का समाधान हो सकता है।

हम लोग जो यहाँ आए हैं वे कई श्रेणियों के लोग हैं। कुछ लोग कौतूहलवश आए हैं कि सब लोग संघ-संघ करते हैं, हमारे घर वाले भी कहते हैं और दूसरे भी कहते हैं कि संघ में जाओ, तो चलो देख लेते हैं। जैसे खेल दिखाने वाला डमरू बजाता है और नेवले को नचाता है तो भीड़ इकट्ठी हो जाती है। राह चलने वाला भी रुक जाता है, देखता है। जगह न मिले तो लोगों को कंधा मारते हुए आगे घुस जाता है। फिर देखता है अरे यह तो नेवले का खेल ही है, और चला जाता है। ऐसे लोग जिज्ञासा वश नहीं आए हैं, कौतूहलवश आए हैं। उनका कौतूहल इतना ही होता है कि यहाँ संघ में क्या-क्या होता है। देख लेते हैं और चले जाते हैं।

दूसरी श्रेणी के लोग होते हैं, जिज्ञासु, जो वास्तव में जानना चाहते हैं। वास्तव में अपनी शंकाओं का समाधान करना चाहते हैं। वे देखकर चले नहीं जाते। वे अपनी समस्त शंकाओं का समाधान करते हैं। हमें चर्चाओं के लिये खूब समय मिलता है। फिर आपके घटप्रमुख, आपके शिक्षक, आपके शिविर-प्रमुख भी उपलब्ध हैं। अपनी शंका को बढने नहीं दीजिए। तुरन्त निवारण कर लीजिए। तब देखिए जीवन में कितना आनन्द है। यहाँ आने के बाद आपने ऐसा अनुभव किया होगा कि शंकाएँ तो थी, लेकिन निवारण हो गया। निवारण उनका ही होगा जो हृदय से निर्मल होंगे। निष्कपट भाव से सुनने का प्रयत्न करेंगे। पूछने का प्रयत्न करेंगे। जब तक समाधान न हो, प्रयत्न करते रहेंगे, रुकेंगे नहीं तो समाधान हो जाएगा। यह ग्यारह दिन का शिविर हमारे लिये एक दुर्लभ अवसर है। कोई भी शंका रह नहीं जाए। ऐसी आशा करते हैं और आज के मंगल प्रभात में श्री क्षत्रिय युवक संघ का यही मंगल संदेश है।

जय संघशक्ति!

*

गतांक से आगे

साधना की प्रतिक्रियाएँ

– स्वामी यतीश्वरानन्द

अपनी चेतना को परमात्म-चेतना से जोड़ो :

आध्यात्मिक चेतना को हमारी व्यक्तिगत चेतना का विस्तार होना चाहिए। हमें अपनी व्यक्तिगत चेतना के सुदृढ़ आधार पर खड़े होने के बाद आध्यात्मिक चेतना का विकास करना चाहिए। बिन्दु को सर्वप्रथम बहुत निश्चित होना चाहिए और उसके बाद उसे समय वृत्त के साथ तादात्म्य स्थापित करना चाहिए। अत्यन्त स्पष्ट बिन्दुत्व-बोध के बिना वृत्त का अनुभव सम्भव नहीं है। जब ''मैं हूँ'' तभी ''भगवान'' हैं। ''मैं समस्त समस्याओं से रहित आत्मा हूँ''; इस ''मैं'' को बलवान बनाना होगा। दूसरे ''मैं'' को, सीमित ''मैं'' को, जो निरंतर समस्याएँ पैदा करता है, दूर करना होगा। हमें अपनी चेतना को बनाए रखना है, लेकिन हमारी चेतना का केन्द्र मिथ्या अहंकार से हटाकर वास्तविक आत्मा में स्थापित करना चाहिए। हमें सदा अपनी उच्चतर चेतना में बद्धमूल रहना चाहिए। कई बार हम अपने व्यक्तिगत चेतना-बोध में प्रतिष्ठित हुए बिना अनन्त में तैरना चाहते हैं। कोई भी ऐसा अवसर नहीं होना चाहिए जब हम अपनी चेतना में बद्धमूल न हों। हमारी जड़ें कहीं न कहीं गहरी होनी चाहिए। जब हम अपनी जड़ों को मिथ्या आधार से हटाएँ तो हमें तत्काल अपनी सच्ची आत्मा में बद्धमूल हो जाना चाहिए और स्वयं को आधारहीन स्थिति में नहीं रखना चाहिए।

जब भक्त अपने ध्यान के विषय का चिंतन तथा इष्ट के रूप की स्पष्ट कल्पना करें तब उन्हें उनके साथ एक सम्बन्ध स्थापित करने में भी समर्थ होना चाहिए, अन्यथा वे कल्पना-जगत् में तैरते रहेंगे। साधक को अपनी चेतना को अपने ध्यान के विषय, इष्ट की चेतना के साथ संयुक्त करने में समर्थ होना चाहिए। ऐसा न करने पर गहरी समस्या और अस्थिरता आ सकती है और साधना का उद्देश्य सफल नहीं होगा। इष्ट की जीवन्त सत्ता के संस्पर्श में न आने पर तुम्हें लगेगा कि तुम मानो हवा में तैर रहे हो और तुम आधारहीन हो जाओगे। तुम्हारी अपनी चेतना अपना आधार खो देगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम्हें असत्य आधारभूमि से अतिशीघ्र तथा निश्चयपूर्वक अपनी जड़ें निकाल लेनी चाहिए। अपने इष्ट की निश्चित सत्ता की अनुभूति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। तब तुम्हें आन्तरिक शान्ति भी प्राप्त होगी। इष्ट एक कल्पना मात्र नहीं है। इष्ट के रूप की स्पष्ट कल्पना के बाद उनके सान्निध्य की अनुभूति सचमुच होती है। यह एक बहुत महत्त्व की बात है। यदि ध्यान का अभ्यास सही ढंग से किया जाये तो तुम्हें असीम शक्ति, शान्ति और स्थिरता प्राप्त होगी मानो तुम्हारे हृदय में आनन्द का घट स्थापित हो। तब कुछ भी तुम्हें विचलित नहीं कर सकेगा।

साधना के अनेक वर्तमान बुरे परिणाम इष्ट की चेतना को अपनी चेतना से जोड़े बिना, इष्ट के साथ आवश्यक सम्बन्ध स्थापित किये बिना, उनके रूप की स्पष्ट कल्पना के कारण होते हैं। आध्यात्मिक जीवन में ऐसा नाजुक समय सदा उपस्थित होता है। ऐसी कठिनाई उन सभी के सामने आती है, जो अपनी साधना को तीव्रता, नियमितता और निष्ठापूर्वक करते हैं। जो सचमुच प्रगति करते हैं तथा सचमुच उत्साहपूर्वक ध्यान करते हैं, उन सभी के सामने यह समस्या आती है। इस संकट और अस्थिरता से कोई बच नहीं सकता, लेकिन उनको अपने आध्यात्मिक गुरु की सलाह लेनी चाहिए और अपनी साधना के बारे में चर्चा करनी चाहिए। यदि कोई समस्या ही न उठे, जैसा कि कुछ लोगों में होता है तो कुछ न कुछ गड़बड़ है; संभवत: उनकी साधना कारगर नहीं है।

ज्ञानी में ये संकट बहुत कम प्रचण्ड होता है। उसमें अधिक विवेक और संतुलन होता है, फिर भी कुछ समस्याएँ तो प्रकट होती ही हैं। लेकिन सदा याद रखो

कि ज्ञानी और भक्त दोनों में सभी परिस्थितियों में व्यक्तिगत चेतना का विकास होकर अध्यात्मचेतना का उदय होता है।

स्वप्रयत्न का त्याग न करो :

हम सभी में ये शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं और हमारी साधना के साथ हमें इन प्रतिक्रियाओं को सहन करने की शक्ति में भी वृद्धि करनी चाहिए। बहुत से लोग इन प्रतिक्रियाओं के दबाव से टूट जाते हैं। बहुत से लोग कुछ समय के लिये पूरी तरह अस्थिर हो जाते हैं। वे साधना के पूर्व जैसे थे, उससे भी बदतर हो जाते हैं। यदि तुम चेतना के अपने केन्द्र को नीचे से ऊपर की ओर ले जाना चाहते हो तो तुम्हें अस्थिरता के समय से गुजरना होगा। जब तक लोग सांसारिक जीवन व्यतीत करते रहते हैं, तब तक उन्हें इन विभिन्न अवस्थाओं का भान नहीं होता, लेकिन सही ढंग से की गयी साधना सर्वदा विभिन्न अचेतन वृत्तिप्रवाहों का मन्थन करती है, जिससे अस्थिरता आ जाती है। कई बार ऐसे लोगों में मानसिक बल नहीं बचा होता है; कभी-कभी दीर्घकाल तक विक्षेपयुक्त दोलायमान स्थिति और यहाँ तक कि नैतिक अस्थिरता बनी रहती है।

इस निराशाजनक स्थिति में कई बार लोग साधना को उत्साहपूर्वक बढ़ाने के लिये उसका त्याग कर देते हैं। साधना त्यागने से वे आध्यात्मिक दृष्टि से नष्ट हो जाते हैं। तब फिर वे एक दुर्भाग्यपूर्ण पतन से बच नहीं पाते, जिससे वे लम्बे समय तक पुन: उठ नहीं पाते। अत: ऐसी परिस्थितियों में साधना त्यागना बहुत बुरा है और खतरनाक भी। उसको और अधिक पकड़े रहो। उसे और तीव्र और प्रभावशाली बनाने का प्रयत्न करो। धीरे-स्थिर रूप से, एकाग्रता और लगन के साथ ध्यान और जप किये जाना चाहिए; साथ ही नैतिक आदर्शों का कड़ाई से पालन करना चाहिए। ऐसा न करने वाले सभी लोग आगे या पीछे हटा दिए जाएँगे और वे कभी भी लक्ष्य के निकट नहीं पहुँच सकेंगे।

यम और नियम का पालन नहीं करने वाला व्यक्ति कुछ भी हासिल नहीं कर सकता। उसमें सभी दिशाओं से उसके ऊपर दबाव डालने वाले बोझ और तनावों को सहन करने के लिये बहुत कम शक्ति रहेगी। इसीलिए कभी भी साधक के लिये शारीरिक और मानसिक मार्गों से शक्ति व्यर्थ क्षय की कोई गुंजाइश नहीं है। पुरातन आचार्यगण भलीभाँति जानते थे कि उनके यम और नियमों का पालन नहीं किया गया तो उसका परिणाम मानसिक विकार, हमारी सभी क्षमताओं में पर्याप्त कमी तथा इन्द्रियों की अधिकतर दासता के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। इन्हें केवल सिद्धान्त मात्र मत समझो। हम भी साधना की इन प्रारम्भिक अवस्थाओं से गुजरे हैं तथा हमने हमारे महान् आचार्यों को देखा है तथा उनसे बहुत-सी बातें सुनी है। यह किन्हीं पुरातन रूढ़िवादी ग्रन्थों में पाये जाने वाला पुस्तकीय ज्ञान मात्र नहीं है।

साधना का प्रारम्भिक काल, जब व्यक्ति को इन भयानक प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ता है, एक महान् परीक्षा का समय होता है। साधक में धैर्य और अटूट अध्यवसाय होना चाहिए, उसके बाद अच्छे दिन आएँगे। महान् मानसिक शक्ति को नियंत्रण में रखना चाहिए अन्यथा हमारे पास आगे बढ़ने की शक्ति नहीं रहेगी। एक सबल शरीर और सबल मस्तिष्क होते हुए भी एक समय ऐसा आता है जब हम अत्यधिक अस्थिर और भयग्रस्त हो जाते हैं। प्रारम्भ में उच्छृंखल कल्पनाओं और प्रेरणाओं के साथ संघर्ष का काल आता है; उसके बाद है मानसिक यंत्रवतता और बौद्धिक आदतों से संघर्ष का काल। लेकिन उसके बाद स्थिरता, शान्ति और आन्तरिक समता का काल उपस्थित होता है।

यदि साधक गुरु के निर्देशों का सावधानी से पालन करे और साधुओं के संग में रहे तो इनमें से कुछ प्रतिक्रियाओं को अवश्य दूर रखा जा सकता है। लेकिन यदि तुम्हें किसी भी प्रतिक्रिया का अनुभव न हो और यदि तुम पाओ कि तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन प्रारम्भ से ही बाधारहित और सरल है तो बहुत सम्भव है तुम्हारी साधना में कुछ त्रुटि है। बहुत सम्भव है कि तुम्हारी साधना तीव्र अथवा गहरी नहीं है। वह यंत्रवत् चल रही है।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संघर्ष और उलझनें आध्यात्मिक लगन और तीव्रता के असंदिग्ध लक्षण हैं। गैर आध्यात्मिक शक्तियाँ प्राय: आध्यात्मिक प्रयास के साथ जुड़ जाती हैं। लेकिन छिलका दाने से शीघ्र अलग हो जाता है। सच्ची आन्तरिक आध्यात्मिक लगन वाले लोग विजयी और सफल होने तक संघर्ष करते रहते हैं। जिन लोगों ने अपनी आध्यात्मिक पिपासा को कृत्रिम रूप से उत्तेजित किया है, वे संघर्ष के प्रारम्भिक दिखावे के बाद रुक जाते हैं अथवा मानसिक रोगग्रस्त भी हो जाते हैं।

साधक के प्रति सहानुभूति का व्यवहार :

साधना के इस काल में साधक के प्रति अत्यन्त सहृदयता तथा गहरी समझदारी के साथ व्यवहार करना चाहिए क्योंकि यदि देखा जाए तो उसकी अस्थिरता उसकी गलती नहीं है, बल्कि उसकी साधना का परिणम है। इसके लिये उसकी आलोचना करने से कोई लाभ नहीं होगा। हमें उसके बारे में निर्णय नहीं लेना चाहिए। इन अवसरों से गुजरने के बाद वह मानवों में श्रेष्ठ मानव बनकर उभरेगा। यह समय हम सभी के जीवन में आएगा, लेकिन विभिन्न अवस्थाओं में। और यह सौभाग्य है, क्योंकि ये अनुभव हमें दूसरों की सहायता करने में उपयोगी होते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने एक बार कहा था-''मैं अपने गुरुदेव के साथ छह वर्षो तक झगड़ा था; फलस्वरूप मैं साधन-पथ का प्रत्येक इञ्च जानता हूँ।'' उनके तीव्र आध्यात्मिक संघर्ष ने उन्हें उन सभी कठिनाईयों का ज्ञान प्रदान किया, जिन्हें साधक को लाँघना पड़ता है। इस ज्ञान के फलस्वरूप वे हजारों लोगों को मार्गदर्शन प्रदान कर सके।

बहुत से साधक यह सोचकर घबरा जाते हैं कि यदि आध्यात्मिक जीवन ऐसी गम्भीर अस्थिरता पैदा करता है तो यह बहुत हानिकारक और खतरनाक होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि लापरवाह लोगों के लिये यह खतरनाक हो सकता है। जो लोग भारी कीमत चुकाना नहीं चाहते, उन्हें आध्यात्मिक जीवन के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिए। सहजता प्रवृत्तियों और पवित्र स्मृतियों के कारागार की दीवारों को तोड़कर आध्यात्मिक चेतना के खुले प्रकाश में आने का साहसिक कार्य केवल बलवानों के लिये ही सुरक्षित है। इस बीच साधक को अपनी इच्छानुसार संगत में, ऐसे लोगों के संग में विचरण नहीं करने दिया जा सकता जो पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन यापन नहीं करते। वह अभी भी आध्यात्मिक बाल्य और किशोर अवस्था में है और बड़ों की तरह बिना किसी वास्तविक भय के खतरा मोल नहीं ले सकता। यह न सोचो कि तुम अभी से आध्यात्मिक दृष्टि से वयस्क हो गये हो। तुममें से अधिकांश नहीं हुए हैं। अपने आप के विषय में अत्यधिक निश्चिन्त मत होओ।

आध्यात्मिक जीवन कृत्रिम धरातल पर नहीं जिया जा सकता। शारीरिक व्यायाम की तरह साधना नहीं की जा सकती। हमारा जीवन सदा एक स्वाभाविक जीवन होना चाहिए, लेकिन स्वाभाविक जीवन का अर्थ है- हमारी निम्न पशु-प्रकृति के नहीं, बल्कि उच्च स्वभाव के अनुरूप जिया गया जीवन। सांसारिक लोग स्वाभाविक जीवन से जो समझते हैं, उसका यह बिल्कुल विपरीत है। सच्चा आध्यात्मिक जीवन आत्मपिपासा का परिणाम है। यह उच्चतर स्तर पर आरोहण करने की तीव्र साधना होगी, पर तुम बहुत लम्बे समय के बदले उनसे काफी जल्दी गुजर सकते हो। जितनी तीव्र साधना होगी, प्रतिक्रियाएँ भी उतनी ही अधिक होगी, लेकिन उनका समय भी कम होगा। स्वामी अभेदानन्द कहा करते थे कि उन्हें अपने जीवन में दस जन्मों के अनुभव से गुजरना पड़ता था।

सभी योगी अपनी साधना को तीव्र करके आध्यात्मिक संघर्ष का समय कम करने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें महान् प्रतिक्रियाओं, बाधाओं और प्रलोभनों का सामना करना पड़ता है, लेकिन उनमें ऐसी महान् शक्ति और लगन होती है कि वे इन अग्नि-परीक्षाओं से सहर्ष गुजरते हैं, जबकि सांसारिक लोग आध्यात्मिक जीवन में कछुए की चाल से चलने का एक दीर्घकालीन कार्यक्रम बनाते हैं तथा उन्हें पढ़ने और बोलने से ही संतोष करना पड़ता है। *(क्रमशः)*

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

लड़खड़ाते क्षत्रिय समाज की व्यथा ने पूज्य श्री तनसिंहजी को एक निर्जन पर्वत पर जग जननि माँ के शरण में पहुँचा दिया। उनको माँ के शरण में तो जाना ही था, बिना माँ के शरण में गये उन्हें अपने संकल्प को पूरा करने-शक्ति व सामर्थ्य कहाँ से मिलती।

पूज्य श्री तनसिंहजी का संकल्प-''मेरा जीवन अब यह मेरा नहीं, समाज के लिये है और समाज के ही काम आये। मैं अपने समाज के लिये हर सम्भव जो भी बनेगा, करूंगा। कल नहीं, आज नहीं, अभी से इस कार्य में जुट जाऊँगा।''

बिना शक्ति व सामर्थ्य के संकल्प पूरा होना सम्भव नहीं था। पूज्य श्री के व्यथित दिल ने लड़खड़ाते समाज को सम्बल देने व समर्थ बनाने के लिये प्रयास तो किए पर निराशा ही हाथ लगी। वो प्रयास पर्याप्त नहीं थे। तब चारों ओर नजर डाली, अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़ा। सहयोग की उम्मीद कहीं से भी नहीं थी। ऐसे समय में उन्हें कोई ऐसा सहयोगी व सहायक भी नहीं मिला जो उन्हें इस घोर निराशा से उबार सके। एक ईश कृपा ही उन्हें इस घोर निराशा से बाहर निकाल सकती थी और संकल्प को पूरा करने के लिये उन्हें शक्ति व सामर्थ्य प्रदान कर सकती थी।

लड़खड़ाते क्षत्रिय समाज ने पुन: सम्भलने की कोशिश भी की, सोये समाज को जगाने के प्रयास भी हुए पर सफलता के नाम पर निराशा ही हाथ लगी। इसका एक कारण आन्तरिक कलह भी था, जैसा कि पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-

''समय बीतता गया। क्षत्रिय बन्धुओं का समय भी बीतता गया। उनका सर्वस्व लुट चुका था, उस समय वे लड़खड़ाती जिन्दगी को पुन: जागृत करने के लिये अन्तिम ऐतिहासिक प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु उसमें अन्ततोगत्वा मुझे घोर निराशा का सामना करना पड़ा। मैं अपने साथियों से तो दो वर्ष से बिछुड़ ही चुका था, राजपूत आंदोलन में हमारी अपने ही लोगों के कारण हार हुई और फिर राजनैतिक क्षेत्र में मेरे एक दल की हार हो गई। इन परिणामों पर चिन्तित होकर चारों ओर देखा,तो सहायक कोई नहीं था। फिर सोचा, क्यों नहीं तुम्हें ही पुकारूँ? विचार पक्का किया और तत्काल एक निर्जन पर्वत पर चला गया।''

पूज्य श्री तनसिंहजी को उस पर्वत पर यानी वैर के थान पर माँ के सान्निध्य में, उनके चरणों में, उनके मन को अपार शक्ति मिली। उन्हें अनुभव हुआ की माँ आँचल शान्ति सरोवर है, सुखों की खान है, सभी बुरी नजरों से बचाने वाला है यानी माँ का सान्निध्य सबसे सुरक्षित है। वैर के थान पर माँ के सान्निध्य में बीता वक्त उनके जीवन का अनमोल वक्त था। वहाँ बीते वक्त के सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-

''वहाँ तीन माह तक रहकर तेरा भजन पूजन किया। वे मेरे जीवन के अद्‌भुत दिन थे। मुझे यह विश्वास नहीं हो रहा था, सहसा कि इस प्रकार की एकान्तिक साधना को भी तुम स्वीकार करती हो। मुझे तो यहाँ तक संशय था कि तुम हो अथवा नहीं हो। मैंने सुना है संशय करने वाले को नहीं, केवल श्रद्धा करने वाले को ही ज्ञान मिलता है, पर उन्हीं दिनों मुझे मालूम हुआ कि श्रद्धा करने की क्षमता भी तुम्हारी कृपा प्राप्त करने पर अनायास ही मिल जाती है। अनेक चमत्कारों से तुमने केवल एक सप्ताह में विश्वास बैठा दिया कि तुम मेरी बात सुन ही नहीं रही हो बल्कि हर समय पास खड़ी हो। काफी कड़े नियम थे मेरी साधना के, किन्तु तुम्हारी कृपा से मैंने बड़ा सुख पूर्वक समय बिताया। बड़ी व्याकुलता से तेरा पूजन करता था। पाठ करते समय तेरा वर्णन पढते हुए सहसा आँसू उमड़ पड़ते थे।

''एक दिन मेला लगा। आस-पास बहुत से लोग तेरे दर्शनों के लिये आये थे। मैं साधना के नियमानुसार

उनसे दूर एकान्त में उस टीले पर छिपकर बैठा हुआ देख रहा था। कितना जनसमुदाय तेरे अन्दर विश्वास रखकर आ रहा था। कितने असंख्य लोगों की तुम देखभाल करती हो। तेरी विराट सत्ता और तेरी कृपा का स्मरण करते ही आँखों में आँसू ढल पड़े। जब तेरी पूजा में बैठता था तो तेरी मूर्ति को मैं यथार्थ मानता था। मेरी व्याकुलता बढ रही थी, पर मैं चाहता था, तुम दर्शन न दो। पर क्या चाहता था-केवल यही कि इस क्षत्रिय समाज की सेवा के लिये मुझे ज्योति प्रदान करो। क्या करूँ और क्या न करूँ, इसका मार्ग बता दो। तुमने मुझे मार्ग में अटूट विश्वास ही पैदा नहीं किया किन्तु बहुत कुछ आध्यात्मिक शक्तियाँ दी। केवल भक्ति से, केवल व्याकुल होकर पुकारने से तुम यौगिक सिद्धियाँ देती हो, यह मुझे आज मालूम हो रहा है।''

कुण्डलिनी शक्ति जब जागृत होने को होती है तो शरीर में कई तरह की क्रियाएँ स्वत: होने लगती हैं। इन क्रियाओं को होते देख व्यक्ति घबरा जाता है और सोचने लगता है, यह मेरे क्या हो रहा है? यह कोई बीमारी तो नहीं है? पूज्य श्री तनसिंहजी के शरीर में जब कुण्डलिनी की हलचल शुरू हुई, विभिन्न प्रकार की क्रियाएँ होने लगी तो पूज्यश्री भी घबरा गये और सोचने लगे, मुझे ये क्या हो रहा है? मुझे कोई बीमारी तो नहीं है, आदि-आदि। इस सम्बन्ध में पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-

''उस समय तो मैं जानता नहीं था। वे सब क्रियाएँ हो रही थी। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने की स्थिति आ रही थी, मैं घबरा गया। मैंने सोचा यह तो कोई बीमारी है। कोई मार्गदर्शक नहीं था। गुरु नहीं था और कोई होता तो भी वह सब इन बातों को बता सकता था क्या? बाद में पुस्तकें पढी, खासतौर पर रामकृष्ण की तो मुझे मर्म समझ में आ गया। तब मुझे मालूम हुआ कि वे दिन वास्तव में कितने अच्छे थे। कुण्डलिनी के जागरण से मुझे भय होने लगा, तो कानों में एक अजीब किन्तु बड़ा मधुर स्वर सुनाई देने लगा। दोपहर को छोड़कर सारी रात और पूरे दिन वह नाद सुनाई देता था। बड़ा ही अद्भुत आनन्द था, उसे सुनकर, किन्तु उसे भी मैंने समझा नहीं। मैंने तो यही समझा कि यह गायों के गले में बंधी हुई घंटियों का नाद है। लोगों को, मिलने वालों को पूछा भी कि यह गायें दिन भर और रात भर क्या चरती ही रहती हैं? वे तो कुछ सुनते ही नहीं थे। उन्होंने कहा हमें तो नहीं सुनाई देता पर मैं तो फिर भी नहीं समझा कि यह सब क्या है। पुस्तकें पढ़ने पर अब सारी वस्तुएँ ध्यान में आ रही हैं। माँ! यह तो तुम्हारी ही शिक्षा थी-व्याकुल होकर पुकारने पर सब सम्भव है। लेकिन अब ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा है, न कुछ व्याकुलता है।''

तीन माह तक ''वैर के थान'' (पर्वत) पर साधनारत पूज्य श्री तनसिंहजी माँ का भजन पूजन कर अनमने मन से वहाँ से लौट तो आये पर मन में बेचैनी थी। मन लगा नहीं तो पुन: माँ के शरण में पर्वत पर लौट आये। जैसा कि पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-

''साधना समाप्त करने पर इन उपलब्धियों का मुझे अनुमान ही नहीं था, इसलिए बड़ी बेरुखी से रवाना हुआ, दो तीन दिन बाद किसी को पता न लगे, इस प्रकार छिपकर तेरे उसी स्थान पर आया और तेरे मार्गदर्शन के लिये पांच दिन तक निराहार पड़ा रहा। हठ पूर्वक प्राप्ति का वह बचपन भरा अज्ञान था। तुमने उसे भी क्षमा किया और मुझे नई साधना का मार्ग बताया। दो वर्षों से मैं अपने साथी बन्धुओंसे बिछुड़ गया था, पर इनसे पुन: मिलने के लिये अब उतावला हो उठा। बिना बुलाए ही जा धमका। कुछ लोग मुस्कराए। कुछ ने सोचा आ गए न? पर मैं जानता हूँ तुम उनकी बातों पर मुस्करा रही होगी। एक नई प्रेरणा मिली, एक नया जीवन मिला और कार्य के लिये जोश मिला। आज किसी भी कार्य को करते मैं तुझे नहीं भुला रहा हूँ। तू सदा मेरे साथ है। तू मेरा मार्ग निष्कंटक बनाती जा रही है और मैं बढता ही जा रहा हूँ।''

माँ भगवती की कृपा से पूज्य श्री तनसिंहजी को ज्योति मिली, मार्ग मिला। माँ की कृपा से उनमें नई शक्ति व चेतना का संचार हुआ। उनके जीवन में नव प्रभात का आगमन हुआ। नयी उमंग, नये जोश के साथ क्षत्रिय बन्धुओं के संग सद्-पथ पर उनके कदम आगे

बढने लगे। माँ की दया से उनके कार्य में कभी कोई व्यवधान नहीं आया। आगे बढने के लिये माँ शक्ति का उनके साथ बल था। माँ भगवती ने पूज्य श्री को जो बल दिया, हिम्मत व ताकत दी, जो संतोष दिया उससे वे अभिभूत थे, जैसा कि पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-

''तुझे देखकर अपने बन्धु साथियों को देखा, कहाँ जा रहे हैं वे सब। सब कुछ जानते हुए भी चुप था, पर तुम्हारी कृपा से मुझे पहली ही बार मालूम हुआ कि मैं ही मूर्ख हूँ। वे तो सब तेरे साथ के लिये रोते हैं। अब मैं उन्हें धोखा नहीं दे सका। उन्हें हाथ पकड़ बलपूर्वक अपने रास्ते की ओर खींचने लगा। कुछ चिल्लाए, पर किसी की परवाह नहीं की और कार्य में गति आने लगी। जिस किसी से मिलता उसी को अद्‌भुत प्रेरणा मिलती थी। लगता था जैसे गई हुई शक्तियों का पुनर्मिलन हो रहा है। स्वप्न सच्चे होने लगे। राक्षस वृत्ति नष्ट होने लगी और एक नया प्रभात अंगड़ाई लेकर जाग उठा। कुछ जाने वालों के वियोग में रोने लगे पर तुमने मुझे ऐसी शक्तियाँ दे दी थी कि साधारण समय में मैं जो कुछ नहीं कर सकता था वह अब कर दिखाया। बहुत काल पहले मेरा दाहिना हाथ टूटा, तो उसकी जगह बायाँ हाथ उग आया। समय आने पर बायाँ भी टूटा तो दाहिना उग आया, पर कार्य में बाधा नहीं आई। मैं आश्रित था। निर्बल था। मुझे बल देने के लिये तुमने एक दिन फिर दोनों हाथ तोड़ दिये। मैंने देखा सब विकल थे किन्तु तुम्हारी विकलता का कोई पार नहीं। निर्गुण निराकार को मैं तो अपनी सगुण और साकार आँखों से देखूँ या सुनूंगा तो अपने ढंग से देखूँ या सुनूँगा किन्तु दुनिया यही कहेगी-यह तो गपोड़ा है। इसलिए जाने देता हूँ।''

भगवान करुणा के सागर हैं, दयानिधि हैं। विपदा में उन्हें कोई व्याकुलता से पुकारता है तो वे तुरन्त दौड़ आते हैं। विपदा में आर्तभाव से जब गज ने पुकारा तो भगवान पैदल ही दौड़ आये। ग्राह को मार गिराया और गज का उद्धार किया। पूज्य श्री तनसिंहजी के साथ एक शिविर में ऐसी घटना घटी जो दिल दहलाने वाली थी। एक शिविरार्थी अचानक मरणासन्न स्थिति में आ गया। जंगल में दूर-दराज उन्हें बचाने का पूज्य श्री को कोई सहारा नजर नहीं आया। ऐसी विकट स्थिति में पूज्य श्री को माँ याद आई। पैरों तले जमीन खिसकती देख पूज्य श्री ने व्याकुलता में माँ को पुकारा और माँ ने उनकी लाज रखी। इस घटना के सम्बन्ध में पूज्य श्री ने बताया-

''कुछ ही दिनों बाद एक पर्वत शिखर पर क्षत्रियों का एक मेला लगा। एक शिविरार्थी यकायक बीमार हो गया। कुछ ही क्षणों में उसकी नाड़ी चलती-चलती टूट गई। क्या करता? कहाँ से लाता डॉक्टर-वैद्य? और क्या निश्चय कि वे ठीक कर ही देते? फिर इतना तो समय ही कहाँ था? नाड़ी तो बाँह में चल रही थी और वह भी रह रहकर। तब मैंने सर्वात्मना तुम्हें पुकारा। मैं उन दिनों पूजा-पाठ नहीं करता था पर मैंने तेरे सामने ऐसा करने का वादा किया। हुआ क्या? वह उठा और कुछ ही क्षण में उठ गया। हो सकता है यह संयोग हो। हो सकता है ऐसा होता आया हो। उदाहरण भी इस कदर मिल सकते हैं, पर तुमने जो विश्वास दिलाया वह इतना गहरा है कि यह भी प्रमाण उसके सामने फीके लगते हैं। क्या तुम पूजा पाठ के वादे से संतुष्ट हुई? नहीं, मेरे कल्याण और विकास के लिये यह आवश्यक था। तुमने मेरे हित के लिये ही ऐसा किया। तुमने हाथ पकड़कर उत्तम वैद्य की भाँति छाती पर घुटना टेक कर मुझे दवाई दी। मेरा रोम-रोम कृतज्ञता, श्रद्धा और विश्वास से पुनर्जीवित हो उठा। व्यथित होकर क्षत्रिय समाज की पुकार उस घटना के दस दिन बाद ही तुम्हें सुनाई-''तुम सब जानती व्यथा हमारी किसको पुकारें माँ, सपनों की नगरी सूनी है उजड़ा उपवन माँ।'' और उसके बाद तुम्हारा ही विश्वास प्राप्त कर एक नवीन विश्वास भरा सन्देश दुनिया को दिया-''वो कौम न मिटने पायेगी, ठोकर लगने पर हर बार उठती जायेगी।'' यह विश्वास भरा संदेश है, जो आज मेरे हर क्षत्रिय साथी के कंठ में ही नहीं, रोम-रोम में ध्वनित हो रहा है। तुम वास्तव में शक्ति हो-तुमने हमें कितना बल दिया।'' ***(क्रमशः)***

राणा सांगा

– स्व. सुरजनसिंह जी झाझड़

महाराणा संग्रामसिंह, जो राजस्थान में राणा सांगा के नाम से प्रसिद्ध हैं- ये इतिहास प्रसिद्ध महाराणा कुंभा के पौत्र और महाराणा रायमल के तृतीय पुत्र थे। इनका जन्म वि.सं. 1539, बैशाख कृष्णा नवमी (तद्नुसार 12 अप्रेल, सन् 1482) के दिन हुआ। भाइयों के कलह में घायल होकर अपने बड़े भाई पृथ्वीराज के भय से यह अज्ञातवास में चले गये। अपनी विपत्ति के दिनों का अधिकांश समय इन्होंने आमेर के राजा पृथ्वीराज और श्रीनगर (अजमेर के पास) के शासक कर्मचन्द पंवार के यहाँ गुप्त रूप में रहकर बिताया। महाराणा रायमल के बड़े पुत्र कुँवर पृथ्वीराज का कुँवर पदे में ही देहांत हो जाने तथा दूसरे पुत्र जयमल के-टोडा के सुरताण सोलंकी के साले रतना सांखला के हाथ से मारे जाने के पश्चात्-मेवाड़ राज्य के उत्तराधिकारी कुँवर सांगा ही रह गए थे। महाराणा रायमल ने सांगा का श्रीनगर में होने का भेद खुलने पर उन्हें वापस मेवाड़ में बुला लिया और सम्वत् 1566 वि. में उक्त महाराणा का स्वर्गवास हो जाने पर जैठ सुदी 5 सं. 1566 वि. (23 मई सन् 1509 ई.) को सांगा मेवाड़ के महाराणा के रूप में राज्याभिषिक्त हुए।

लगातार तेरह सौ वर्षों तक मेवाड़ भूमि को अपने रक्त से सींचने और बलिदानों से गौरवान्वित बनाये रखने वाले अनमी शिशोदिया वंश में महाराणा संग्रामसिंह का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। सांगा के दादा महाराणा कुंभा ने मालवा और गुजरात के मुस्लिम शासकों को अनेक युद्धों में बारम्बार हराकर उनका गर्व गंजन किया। नागौर के नवाबी राज्य को नष्ट करके वहाँ पर अपनी संरक्षता में नया नवाब स्थापित किया। राजस्थान के छोटे-बड़े अनेक स्वतंत्र शासकों पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन बनाया। वास्तव में वे अपने समय के राजस्थान के सर्वाधिक शक्तिशाली नरेश थे, पर उन्हीं के पौत्र महाराणा सांगा कुछ अंशों में अपने दादा से अधिक बढे-चढे थे।

महाराणा सांगा ने मालवा और गुजरात के मुस्लिम शासकों को अनेक युद्धों में अलग-अलग हराकर भागने को बाध्य किया और अन्त में दोनों शक्तिशाली राज्यों के संयुक्त आक्रमण को भी विफल करके अपने दक्ष-सेनानायक होने का परिचय दिया। मालवा के सुल्तान महमूद द्वितीय को युद्ध में पकड़कर तीन माह तक चित्तौड़ के दुर्ग में कैद रखा।

दिल्ली के लोदी सुल्तान इब्राहिम को हाडोती के खातोली नामक स्थान के पास पराजित करके उसके एक शाहजादे को कैद किया तथा दूसरी बार पीळाखाळ के युद्ध में दिल्ली की सेनाओं का पूर्ण पराभव करके बयाना तक अपनी हद कायम की। इसी प्रकार ईडर के राजा रायमल के प्रसंग में गुजरात पर चढाई करके वहाँ के सुप्रसिद्ध नगर अहमदनगर को जलाकर खाक किया। बड़नगर तथा बीसलपुर तक धावे किये और सारे गुजरात में उसके भय से त्राहि-त्राहि मच गई। उस समय समस्त उत्तरी भारत में महाराणा के प्रभाव और सैन्य शक्ति को चुनौती देने की शक्ति और सामर्थ्य किसी भी बादशाह या सुल्तान में नहीं था। उत्तर पूर्व में दिल्ली, दक्षिण में मालवा का सुल्तान मेहमूद खिलजी और पश्चिम में गुजरात का टांक वंशी सुल्तान मुजफ्फर बारी-बारी से और अंत में एक साथ संगठित और संयुक्त होकर भी उस शक्तिशाली राणा के सामने एक युद्ध में भी नहीं टिक सके। महाराणा सांगा ने तीनों दिशाओं में राज्य करने वाले इन सुल्तानों के पैरों को मानो जकड़ दिया हो, कि वे आगे नहीं बढ सके। डिंगल गीत का नीचे उद्धृत चरण इसी आशय का द्योतक है -

इब्राहि पूरब दिसा न ऊलटै।
पिछम मुदाफर न दे पयाण।
दिखणी महमद साह न दौड़े।
सांगो दामण त्रहुं सुरताण।

महाराणा सांगा ने राजस्थान के किसी भी स्वतंत्र राज्य पर चढाई नहीं की-किसी भी हिन्दु राजा से उनका युद्ध नहीं हुआ-तो भी समग्र राजस्थान और मालवा के समस्त हिन्दु राजा उन्हें अपना एकछत्र नेता मानते थे। दूर-दूर तक के राजपूत राजा देश रक्षार्थ उनके झण्डे के नीचे खड़ा होने में गौरव अनुभव करते थे। महाराणा ने मुगल बादशाह बाबर से टक्कर लेने हेतु जब खानवा की ओर प्रयाण किया, उस समय उनके झण्डे के नीचे राजस्थान के सुदूर उत्तरी भाग बीकानेर से लेकर मालवा के ठीक मध्य स्थित रायसेन और विदिशा तक के राजपूत राजा अपनी-अपनी सेनाओं सहित विद्यमान थे। हिन्दुराजा ही नहीं तत्सामयिक उत्तरी भारत के मुसलमान सामन्त भी महाराणा के इस अभियान में उनके नेतृत्व में संगठित हुए थे। मेवात (अलवर और तिजारा) का स्वतंत्र शासक राजा हसन खाँ मेवाती अपने दस हजार मेवाती वीरों के साथ राणा की सेना के दाहिने पार्श्व में स्थित था। इब्राहिम लोदी का पुत्र महमूद लोदी भी अपनी जमीअत के साथ इस युद्ध में शामिल था। हिन्दु राजाओं में आमेर के राजा पृथ्वीराज, बीकानेर के कुंवर कल्याणमल, मेड़ता के राव वीरमदेव मेड़तिया, जोधपुर के राव गांगा के प्रधान सेनापति रायमल राठौड़, ईडर के भारमल, बूंदी के राव नारायणदास के भाई नरबद हाड़ा, श्रीनगर के पंवार कर्मचन्द, सिरोही, डूंगरपुर, बांसवाड़ा, देवलिया प्रतापगढ़, रामपुरा, ग्वालियर, चंदेरी, कालपी, रायसेन आदि के समस्त राजा तथा राव महाराणा के इस अभियान में उनके साथ थे।

यह था महाराणा सांगा का अद्‌भुत व्यक्तित्व, जिसने राजस्थान से मालवा तक के इस विस्तृत वीर जनपद को अभूतपूर्व एकता के सूत्र में पिरो दिया था। राजस्थान के विगत सात सौ वर्षों के इतिहास में ऐसी मिशाल दूसरी नहीं मिलेगी। स्व. ओझाजी ने अपने उदयपुर के इतिहास में लिखा है-''सांगा अन्तिम हिन्दु राजा था, जिसके सेनापतित्व में सब राजपूत जातियाँ विदेशियों से लड़ने को सम्मिलित हुई। यद्यपि उसके बाद और भी अनेक वीर उत्पन्न हुए, परन्तु ऐसा कोई न हुआ जो सारे राजपूताने की सेना का सेनापति बना हो।'' खानवा के युद्ध में इस विशाल वाहिनी के होते हुए भी महाराणा को सफलता नहीं मिली। महाराणा की सेना के प्रहार से बाबर की सेना में त्राहि-त्राहि मच गई थी मगर कुछ कारणों से यह जीत के कगार पर खड़ा युद्ध भी हार में बदल गया।

महाराणा सांगा केवल इसी एक युद्ध में, जो उनके जीवन का अन्तिम युद्ध था, पराजित हुए थे-बाकी इससे पूर्व लड़े समस्त भयंकर युद्धों में विजयश्री सदैव उनके चरणों को चूमती रही। शत प्रतिशत युद्धों के विजेता-दिल्ली, मालवा और गुजरात के मुस्लिम शासकों के मान मर्दन करने वाले, अस्सी घावों को शरीर पर धारण करने वाले और एक आँख, एक हाथ तथा एक टांग को युद्धाग्नि में होमने वाले महाराणा सांगा वास्तव में भारतीय क्षत्रियत्व के जाज्वल्यमान प्रतीक थे।

महाराणा केवल युद्धों के विजेता वीर योद्धा और सफल सेनानायक के रूप में ही गौरवान्वित नहीं थे, किन्तु वे अपने समय के महानदानी-उदारवेत्ता और शरणागत वत्सल नरेश थे। माण्डू (मालवा) के सुल्तान महमूद द्वितीय को गांगरूण के युद्ध में पकड़कर महाराणा चित्तौड़ ले आये। वे यदि चाहते तो सुल्तान को मारकर मालवा राज्य अपने राज्य में मिला लेते, जैसा कि उस समय के अन्य मुसलमान शासक करते आ रहे थे, परन्तु महाराणा ने उससे उल्टा किया। उन्होंने महमूद के घावों का उपचार करवाया, स्वस्थ होने पर तीन माह के पश्चात्, मालवा का आधा राज्य देकर उसे ससम्मान माण्डू पहुँचाया। महाराणा की इस उदारता को राजनैतिक भूल कहा जा सकता है, परन्तु तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने महाराणा के इस औदार्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। सम्राट अकबर के दरबारी लेखक ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद ने तबकाने अकबरी में लिखा है-''जो काम राणा सांगा ने किया, वैसा काम अब तक और किसी हिन्दू राजा या मुसलमान बादशाह से न हुआ।

(शेष पृष्ठ 29 पर)

धर्म की दुर्दशा मत करो!

– महात्मा रामचन्द्र वीर

हमारा सनातन वैदिक धर्म विश्व के समस्त मत-मतान्तरों, मजहबों एवं रिलीजन्स से करोड़ों वर्ष पूर्व का है, हमारे वेद संसार के सर्वप्रथम ग्रन्थ माने जा चुके हैं यदि हम वेदों से ही सन्तुष्ट रहते तो हमारे पतन का कारण ही उपस्थित न होता। सनातन वेदों से ही हम समस्त सांसारिक सुख साधनों से सम्पन्न रह सकते थे और पारलौकिक कल्याण के हित भी सिद्धियाँ प्राप्त कर सकते थे, किन्तु पण्डितों ने वेदों की उपेक्षा करके अनेक ऐसे ग्रन्थों का निर्माण कर डाला, जो अनाचार, दुराचार का प्रचार करने के लिये रचे गये थे। वे भी धर्मग्रन्थ कहलाने लग गये। मेरा संकेत वाममार्ग के तंत्र ग्रन्थों की ओर है, जिनमें भ्रष्टाचार को ही धर्म बतलाया गया है।

जिन तंत्र ग्रन्थों में वमन किये गये पदार्थ को तथा स्खलित हुए वीर्य को चाटने वाले भ्रष्टाचारी को पूर्ण सिद्ध बतलाया जाता हो, उनसे बढ़कर धर्म की दुर्दशा कौन कर सकता है?

विक्रमादित्य के 1000 वर्ष पूर्व भारतवर्ष में वाममार्ग का प्रबल प्रचार था। भारतवर्ष के 50 प्रतिशत ब्राह्मण वैदिक सनातन धर्म से विमुख होकर वाममार्गी बन गये थे। ब्राह्मण वर्ण आदिकाल से ही विद्या एवं बुद्धि से सम्पन्न रहा है, और अपनी प्रतिभा से मानव समाज का नेतृत्व करता रहा है। वाम काल में ब्राह्मणों की प्रतिभा का दुरुपयोग होने लगा। ब्राह्मणों ने राक्षसराज रावण रचित तंत्र ग्रंथों को ही धर्म ग्रन्थ मान लिया और पुराणों तथा स्मृति ग्रन्थों में पंचमकारों (माँस, मीन, मदिरा, मुद्रा, मैथुन) की 'महिमा' का समावेश करके आर्य (हिन्दू) जाति को पतन के गह्वर में ढकेलना प्रारम्भ कर दिया।

'मद्यं मांसं च मीनं मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पंचमकारास्यु: मोक्षदाहि युगे-युगे।।'

की धूम मचाई गयी-इतना ही नहीं, नराधम वाममार्गी विद्वानों ने

'मातृ योनिं परित्यज्य विहरेत् सर्व योनिषु:।'

जैसे भ्रष्टाचारपूर्ण श्लोकों को गर्व पूर्वक प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। विश्ववन्दनीय विप्रों ने वाम काल में अपने भ्रष्टाचारों को पुष्ट करने के लिये अनेक कल्पित कथाएँ रच-रचकर मनगढ़न्त श्लोकों को धर्म ग्रन्थों में ठूँस-ठूँस कर जनता की आँखों में धूल झोंकना प्रारम्भ कर दिया। पंचमकार का प्रचार करने के लिये धूर्त वामियों ने कल्पित कथाओं तथा श्लोकों को इतनी चतुरता तथा कुशलता से हमारे पवित्र ग्रन्थों में समाविष्ट किया है कि साधारण बुद्धि के सरल स्वभाव वाले पण्डित यह नहीं समझ सकते कि इसमें कितना सत्यांश है। चरित्रभ्रष्ट वाममार्गी विद्वानों ने किसी भी प्राचीन ग्रन्थ को निर्मल निर्दोष नहीं रहने दिया। यही कारण हैं कि स्मृतियों और पुराणों में जहाँ माँस, मदिरा, मैथुन की निन्दा भरी हुई है वहाँ कुछ श्लोक प्रशंसा के भी मिल जाते हैं। मनुस्मृति को ही लीजिए। यह धर्मग्रन्थ हमारा परम पवित्र सनातन ग्रन्थ है और इसमें मांसाहार के निषेध के अनेक स्पष्ट श्लोक हैं किन्तु इसी महाग्रन्थ में श्राद्ध प्रकरण में दो चार श्लोक मांसभोजियों को सहायता प्रदान करते हैं। एक ही ग्रन्थ में दो प्रकार के विचार पढ़कर साधारण मनुष्य भ्रम में फंस जाता है। वाममार्ग रूपी नरक के कीट पापी पाखण्डी पिशाचों ने श्रीमद्‌भागवत में भगवान कृष्ण को परस्त्रीगामी सिद्ध करने का दुस्साहस किया है। चीरहरण जैसी कथाएँ इन वाममार्गी पण्डितों के ही मस्तिष्क की कुटिल कल्पना है। भगवान शिव को दुर्व्यसनी, गंजेड़ी, भंगेड़ी, नशेबाज, ओघड़ सिद्ध किया गया है। भैरव को मांसाहारी एवं रक्तपान करने वाला, जगज्जननी दुर्गा को मदिरा-माँस भक्षण करने वाली तथा पतितपावन दीनबन्धु भगवान राम को भी मांसाहारी सिद्ध करने का कुत्सित प्रयत्न किया गया है। गोस्वामी तुलसीदासजी द्वारा रचित रामायण 300 वर्षों में ही क्षेपकों से भर गयी और उसका

आकार दो गुना हो गया, तब लाखों वर्ष पूर्व रचे गये वाल्मीकीय रामायण में कितने अधिक कल्पित श्लोक भ्रष्टाचारी वाममार्गी विद्वानों ने भर दिये होंगे इसकी कल्पना करके रोम-रोम प्रकम्पित हो जाता है। वाममार्गियों ने वाल्मीकीय रामायण सदृश पावन ग्रन्थ में कुछ स्थानों पर भगवान रामचन्द्र के द्वारा पशु हत्या की चर्चा की है किन्तु कहीं भी यह सिद्ध नहीं होता कि श्री रामप्रभु ने मांसाहार किया। वरन् अगणित प्रमाण इसके विरुद्ध ही मिलते हैं।

वाल्मीकीय रामायण में सम्राट दशरथ के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन अत्यन्त अश्लील और घृणित संदर्भों से पूर्ण है। इस अश्वमेध का कोई फल भी नहीं मिला, तभी तो दशरथ को पुत्रेष्टि यज्ञ करना पड़ा।

इसी प्रकार वाल्मीकीय रामायण की वह कथा सर्वथा मिथ्या है, जिसमें चित्रकूट की ओर जाते हुए भरत जी की सेना तथा अयोध्या के लाखों प्रजाजनों का प्रयाग में मुनि भारद्वाज द्वारा स्वागत किया जाता है और मुनि भारद्वाज अपने योग बल से भरत जी के प्रजाजनों एवं सैनिकों के लिये माँस, मछली, मदिरा प्रचुर मात्रा में उपस्थित करते हैं। इतना ही नहीं मुनिराज भारद्वाज के योग बल से साठ सहस्त्र सुन्दर स्त्रियाँ भी प्रकट होती हैं जिनके साथ अवधवासी रात्रि पर्यन्त कामवासना की तृप्ति करते हैं। सोचा जा सकता है कि क्या एक महात्मा के आश्रम में ऐसा भ्रष्टाचार होना सम्भव है? क्या यह प्रकरण पढ़कर विधर्मी तथा विदेशी हमें धिक्कारेंगे नहीं? क्या सभ्य संसार के सम्मुख इन कल्पित कथाओं के कारण हिन्दुओं का मस्तक लज्जा से नत नहीं होगा? क्या इससे भी नीचता, निर्लज्जापूर्ण कोई कल्पना हो सकती है? क्या महाराज दशरथ की मृत्यु से शोकसन्तप्त और भगवान राम की विरह व्यथा से व्याकुल हुआ जन समुदाय इस प्रकार काम क्रीड़ा कर सकता था? जिस जनसमुदाय में जीवन मुक्त महात्मा जनक सदृश महापुरुष विद्यमान हों और ब्रह्मर्षि वशिष्ठ एवं सुमंत्र जैसे विवेकी हों तथा राजमाता कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी आदि पूजनीय देवियों की उपस्थिति हो, उसमें मद्य, माँस, मैथुन का व्यवहार होना असम्भव है। क्या परमादरणीय महर्षि भारद्वाज सदृश महात्मा द्वारा अतिथि-सत्कार में कन्द, मूल, फल दुग्धादि का उपहार न देकर माँस, मीन, मदिरादि उपस्थित करना उन महात्मा की महानता को नष्ट नहीं करता? वह ऋषि का आश्रम था या वर्तमान काल का कोई होटल था? किन्तु वाम-मार्गी धूर्त नराधर्मों को तो येनकेनप्रकारेण माँस, मदिरा, मीन, मुद्रा, मैथुन का प्रचार करना ही अभिष्ट था। अपनी स्वार्थसिद्धि के निमित्त धूर्त पाखण्डियों ने उपरोक्त कथा का वर्णन पूरे एक सर्ग में किया है। यदि उस पूरे सर्ग को निकाल कर गंगा में प्रवाहित कर दिया जाय तो वाल्मीकि मुनि की स्वर्गीय आत्मा हर्षित भी होगी और वाल्मीकिय रामायण का कथा प्रसंग भी भंग नहीं होगा। जिस सर्ग में माँस, मदिरा, मैथुनादि का वर्णन है उसके निकाल देने से भरत जी की सेना के स्वागत की कथा नहीं टूटती है, इसी से सिद्ध होता है कि वह पूरा सर्ग ही पीछे समाविष्ट किया गया है। माँस लोलुप नराधम नीचो! तुम्हें धिक्कार है!

गंगा को पार करते समय देवी सीता द्वारा गंगा की स्तुति में वन से सकुशल लौटते समय गंगाजी को एक सहस्त्र मदिरा के कलश तथा मांस चढ़ाने का संकल्प करना क्या सीता की महानता को कम नहीं करता? क्या जगज्जननी जानकी माता भी वर्तमान समय की मूर्ख स्त्रियों की तरह अविवेकपूर्ण मनौतियाँ मानने वाली अन्ध श्रद्धाग्रस्त महिला थीं?

भगवान श्रीराम तथा श्री लक्ष्मण द्वारा चित्रकूट में पर्णशाला बनाने के उपरान्त नवीन गृह में प्रवेश करने के समय अनेक देवी-देवताओं की पूजा करके उनकी प्रसन्नता के लिये अग्नि में मृग को भूनना क्या सत्य घटना मानी जा सकती है? इसी प्रकार धूर्तों ने समस्त ग्रन्थों में अनेक अस्वाभाविक असत्य कपोल-कल्पित कथाओं का मायाजाल बिछा दिया है। विवेकशील विद्वानों द्वारा गम्भीरता पूर्वक विचार-विमर्श करने पर ही इस मायाजाल से मक्ति मिल सकती है। सर्व साधारण समुदाय तो इस

कपट जाल में फँस ही जाता है। वस्तुत: रामायण काल में देवतागण ऋषि, मुनि एवं आर्य जाति के सर्व साधारण स्त्री-पुरुष न तो माँस भक्षण करते थे और न देवी-देवताओं के निमित्त पशु-बलि देते थे।

ततः पुष्पबलिं कृत्वा शान्तिं च स यथा विधि।
दर्शयामास रामाय तदाश्रमपदं कृतम्।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 15 श्लोक 25)

पंचवटी में लक्ष्मण जी ने भगवान राम के लिये जो आश्रम निर्मित किया था उसका वर्णन उपर्युक्त श्लोक में है अर्थात् उन्होंने पुष्पों की बलि (उपहार) देकर पुन: विधि-पूर्वक शान्ति-विधान किया। तदन्तर वह बनाया हुआ आश्रम भी रामचन्द्र जी को दिखाया। पंचवटी में अगणित मृग एवं अनेक प्रकार के पशु-पक्षी थे। यदि उस समय आर्य-जाति में पशुबलि की कुप्रथा होती तो श्री लक्ष्मण मृग आदि पशुओं के होते हुए पुष्पों की बलि क्यों देते?

एते च निहता भूमौ रामेण निशितैः शरैः।
ये च मे पदवीं प्राप्ता राक्षसाः पिशिताशनाः।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 21 श्लोक 13)

राक्षसी शूर्पनखा अपने भाई खर को कहती है कि माँस खाने वाले राक्षस मेरे पक्ष से गये थे वे राम के द्वारा तीक्ष्ण वाणों से मारे गये और इस समय भूमि पर पड़े हुए हैं। उक्त श्लोक से सिद्ध होता है कि माँस खाने वालों को प्राचीनकाल में राक्षस कहा जाता था।

तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्च, तद्वर्मभिश्चाग्निसमानवर्णेः।
बभूव सैन्यंपिशिताशनानां, सूर्योदयेनीलमिवाभ्रजालम्।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 24 श्लोक 36)

अग्नि के समान चमकीले धनुष भूषण रथ कवचों से युक्त वह माँस खाने वाले राक्षसों की सेना सूर्योदय के समय के नीले मेघ समूह के समान प्रतीत होती थी।

उपरोक्त वर्णन भगवान राम से युद्ध करने के लिये अग्रसर हुई खर की सेना का है इसमें भी राक्षसों को माँस खाने वाला कहा गया है। इससे सिद्ध हो गया कि उस समय आर्य जाति के मनुष्य माँस से घृणा करते थे।

त्रिशराश्चय महाबाहू राक्षसः पिशिताशनः।

(अरण्य काण्ड सर्ग 35 श्लोकार्द्ध 3)

माँसाहारी रावण कहता है-महाबाहु राक्षस त्रिशिरा जो माँस खाने वाला है यहाँ स्वयं रावण ने भी राक्षसों का परिचय मांसाहार से ही दिया है।

निष्क्रम्यान्तः पुरात्तस्मात्किंकृत्यमिति चिंतयन्।
ददर्शाष्टौ महावीर्यान् राक्षसान् पिशिताशनान्।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 54 श्लोक 18)

अब क्या करना होगा यह सोचता हुआ प्रतापी राक्षसराज निकला और माँस खाने वाले 9 राक्षसों को उसने उसी समय देखा। उपरोक्त श्लोक से भी राक्षसों का परिचय माँसाहारी बताकर दिया है। इससे स्पष्ट प्रमाण क्या हो सकता है? माँसाहारी ही राक्षस होते हैं इसमें सन्देह नहीं।

शीघ्रमेवहि राक्षस्यो विरूपा घोरदर्शनाः।
दर्पमस्यापनेष्यन्तु मांस शोणित भोजनाः।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 56 श्लोक 27)

(रावण ने कठोरतपूर्वक आज्ञा देते हुए कहा) हे माँस रक्त भक्षण करने वाली भयानक और कुरूप राक्षसियों! शीघ्र ही इस सीता का अभिमान दूर करो।

रामायण में स्थान-स्थान पर जहाँ राक्षसों का प्रसंग आया है, वहाँ उन्हें माँस खाने वाले बताकर परिचय दिया है। किन्तु देवताओं, ऋषियों एवं सर्व साधारण स्त्री-पुरुषों को कहीं भी मांसाहारी नहीं बतलाया, इससे सिद्ध होता है कि रामायण के कतिपय स्थलों में भगवान राम तथा लक्ष्मण जी पर पशुबलि देने तथा मृग मारने का आक्षेप किया है, यह स्पष्ट ही वाममार्गी धूर्तों की कपट लीला है। उन्होंने अपने अनाचार को छिपाने के लिये प्रात: स्मरणीय चरित्रों पर कलंक कालिमा लगाने का प्रयास किया है।

व्यक्तं सा भक्षिता बाला राक्षसैः पिशिताशनै।
विभज्यांगानि सर्वाणि मया विरहिता प्रिया।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 60 श्लोक 30)

भगवान श्रीरामचन्द्र भगवती सीता के हरण के

उपरान्त कहते हैं-निश्चय ही माँस खाने वाले राक्षसों ने मेरी प्रिया सीता के अंगों को काट-काट कर बाँट कर मेरी अनुपस्थिति में खा लिया।

भगवान राम के इन उद्‌गारों से तो स्पष्टतया सिद्ध हो जाता है कि भगवान राम माँस खाने वालों को राक्षस कहा करते थे। धिक्कार है उन मतिमन्द मूढ़ पंडित वेशधारी पापियों को जिन्होंने मनमाने श्लोक रचकर वाल्मीकीय रामायण सदृश परम पवित्र ग्रन्थ को भी कलंकित कर दिया।

भक्षयन्तीं मृगान्भीमान्विकटां मुक्तमूर्धजाम्।
अवैक्षतां तु तौ तत्र भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।।

(अरण्य काण्ड सर्ग 61 श्लोक 13)

जटायु का उद्धार करके भगवान राम ने मतंग ऋषि के आश्रम से आगे एक भयानक वन में जब प्रवेश किया तब वहाँ उन्होंने क्या देखा यही उपरोक्त श्लोक में वर्णन है। बड़े-बड़े मृगों का माँस खाने वाली विकटाकार खुले केशवाली राक्षसी को दोनों भ्राता श्री राम लक्ष्मण ने देखा। कहाँ तक वर्णन करें और कितने प्रमाण उपस्थित करें कि भगवान राम के काल में माँस भक्षण करने वालों को राक्षस नाम से ही पुकारा जाता था किन्तु खेद है कि आज कल के माँस खाने वालों को कोई भी राक्षस नहीं कहता। साहस के अभाव में ही ऐसा हो रहा है। वस्तुत: माँस खाने वाले राक्षस हैं।

कराला धूम्रकेशिन्यो राक्षसीर्विकृताननाः।
पिबन्ति सततं पानं सुरामांससदाप्रियाः।।
मांसशोणितदिग्धाङ्गी मांसशोणितभोजनाः।
ता ददर्श कपिश्रेष्ठो रोमहर्षणदर्शनाः।।

(सुन्दर काण्ड सर्ग 17 श्लोक 16-17)

महावीर श्री हनुमान प्रभु ने लंका की अशोक वाटिका में भगवती सीता जी को जिन राक्षसियों के मध्य में भयभीत हुए देखा तो उन्हीं का उपरोक्त श्लोकों में वर्णन है।

रूखे और भूरे केश वाली मद्य-माँस से प्रेम रखने वाली विकृत मुख वाली राक्षसियाँ मदिरा पी रहीं थीं, उनके शरीर में माँस और रक्त लिपटा हुआ था। माँस और रक्त खाने वाली उन राक्षसियों को हनुमान जी ने देखा, जिनके देखने से रोम खड़े हो जाते हैं। माँस मदिरा में लिप्त राक्षसियों के उस दृश्य को देखकर महात्मा हनुमानजी को घृणा और चिन्ता हुई यह आगे के एक सर्ग के श्लोक से प्रकट होता है।

हिंसाभिरुचयो हिंस्युरिमां वा जनकात्मजाम्।
विपन्नं स्यात् ततः कार्यं रामसुग्रीवयोरिदम्।।

(सुन्दर काण्ड सर्ग 30 श्लोक 30)

अर्थात्- हिंसा से प्रेम रखने वाले हिंसक राक्षस संभवत: जानकी को मार डालें इस प्रकार राम सुग्रीव का काम ही नष्ट हो जाएगा। राक्षसों को हिंसक बतलाने के उपरान्त हनुमानजी ने सीताजी को सुनाने के निमित्त उनके श्वसुर महाराजा दशरथजी के गुणों और स्वभाव का वर्णन किया जो निम्न श्लोक में है, जिसे सुनकर सीताजी परम प्रसन्न हुई।

अहिंसारतिक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः।।

(सुन्दर काण्ड सर्ग 31 श्लोक 4)

अर्थात्- वे अहिंसा से प्रेम रखने वाले, नीचों का संग न करने वाले, दयावान सत्य पराक्रमी और श्रेष्ठ इक्ष्वाकुवंश में लक्ष्मी बढ़ाने वाले लक्ष्मीवान थे।

उपरोक्त श्लोक से यह सिद्ध होता है कि अहिंसा के उपासक महा पराक्रमी महाराजा दशरथ ने हिंसा से युक्त पशुबलि एवं अश्वमेध यज्ञ और मांसाहार कदापि नहीं किया। जब दशरथजी को वाल्मीकि मुनि ने दयावान बतलाया है और वह भी हनुमान के द्वारा, तब यह कैसे माना जा सकता है कि अपने पिता के परम भक्त भगवान राम ने हिंसा की होगी? राक्षसों को मारना हिंसा नहीं है। चोर, डाकू, आततायी, गो हत्या करने वाले को जो मारता है वह हिंसक नहीं कहलाता, हिंसक उसी को कहा जाएगा जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये अथवा जिह्वा के स्वाद के लिये किसी निरपराध प्राणी को मारता है। राक्षसों के वर्णन में जहाँ प्रत्येक स्थल पर माँस

शोणित खाने वाले कहकर परिचय दिया गया है, वहाँ दशरथ के परिचय में उन्हें अहिंसावादी दयावान बतलाकर महात्मा वाल्मीकि ने देवी देवताओं के समक्ष पशुबलि करने वाले तथा मांसाहारी मनुष्यों को यथार्थ स्पष्ट कर दिया है। साथ ही दशरथजी को महापराक्रमी बतलाकर उन मतिमन्दों का भ्रम भी भंग कर दिया है जो पशुबलि और मांसाहार को पुष्ट करने के लिये निरामिष भोजी अहिंसावादी दयालु पुरुषों को निर्बल और कायर कहा करते हैं। सत्य तो यह है कि वीरता और क्रूरता पृथक-पृथक हैं। राक्षस क्रूर होते हैं और दशरथ जी शूर थे, वीर थे। पशुबलि देने वाले साक्षात् राक्षस हैं, मांस खाने वाले निशाचर हैं इसमें सन्देह नहीं।

मांसशोणितभक्ष्याभिर्व्याघ्रीभिर्हरिणीं यथा।
सा मया राक्षसी मध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः।।

(सुन्दर काण्ड सर्ग 57 श्लोक 59)

लंका से लौटकर वीरवर महात्मा हनुमान ने भगवान राम तथा कपिराज सुग्रीव को भगवती सीता की जो स्थिति बतलाई थी उसी का उपरोक्त श्लोक में वर्णन है।

अर्थात्- सीताजी खून और माँस खाने वाली राक्षसियों से इस प्रकार घिरी हुई थी जिस प्रकार बाघनियों के मध्य में हिरणी।

कहो माँसाहारी महानुभावों! कुछ चेत हुआ या नहीं? क्या कारण है कि राक्षसों और राक्षसों की स्त्रियों का जहाँ-जहाँ वर्णन आया है वहाँ वहाँ उन्हें माँस, रक्त एवं मद्य प्रेमी बताया जाता है। वाल्मीकीय रामायण से यह सिद्ध होता है कि भगवान राम तथा उनके समस्त सैनिक तक माँस, मदिरा से घृणा करते थे।

वृथा गर्जितनिश्चेष्टा राक्षस्यः पिशिताशनाः।
रावणाय शशंसुस्ताः सीताव्यवसितं महत्।।

(सुन्दर काण्ड सर्ग 57 श्लोक 73)

गर्जन करने से कोई फल न निकलने पर माँस भक्षण करने वाली राक्षसियाँ रावण के पास गयीं और सीताजी का यह निश्चय उसे बताया कि भले ही मैं मर जाऊँ किन्तु रावण को स्वीकार न करूंगी। इसी प्रकार से रामायण के बाल काण्ड, अयोध्याकाण्ड, किष्किन्धा, लंका और उत्तरकाण्ड से भी माँसाहार तथा पशुबलि के विरुद्ध अगिणत प्रमाण मिलते हैं। किन्तु जिह्वालोलुप माँस के चटोरे, वाममार्गी अपने राक्षसी स्वभाव से तभी मुक्त हो सकते हैं, जब वे दुराग्रह का त्याग करें, किन्तु उनका दुर्भाग्य उन्हें ऐसा करने नहीं देता। उन्हें तो कुत्ते, गीध, बगुले की योनी में जन्म लेना चाहिए था उनका वश चलता तो वे मनुष्य योनि में जन्म न ले इन योनियों में जन्म ले लेते। ऐसे लोग धर्म की दुर्दशा करने को ही धर्म समझते हैं। तुलसीकृत रामायण के लंका काण्ड में भगवान राम को भक्त विभीषण कहते हैं -

मेघनाद का यज्ञ अपावन। खल मायावी देव सतावन।।

हे प्रभु! देवताओं को सताने के उद्देश्य वाला खल मायावी मेघनाद अपवित्र यज्ञ कर रहा है। यह सुनते ही दीनबन्धु भगवान श्री राम ने अंगदादि वीर योद्धाओं को आज्ञा दी।

लक्ष्मण संग जाहु सब भाई।
करहु विध्वंस यज्ञ को जाई।।

भगवान श्रीरामचन्द्र की आज्ञा पाते ही-

अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमन्त।
बंदि राम पद कमल युग चले तुरन्त अनन्त।।

फिर क्या होता है यह आगे की चौपाई में स्पष्ट है-

जाय कपिन्ह तहँ देखा वैसा।
आहुति देत रुधिर अरु भैंसा।।
किन्ह कपिन्ह तब यज्ञ विध्वंसा।।

इस प्रकार मेघनाद के पशु-यज्ञ को विध्वंस करके और मेघनाद का वध करके राम सेना के साथ लक्ष्मण लौटते हैं। इससे सिद्ध होता है कि राक्षसगण देवी-देवताओं के नाम पर यज्ञ आदि में पशुओं का वध करते थे और देवगण उन यज्ञों से प्रसन्न न होकर राक्षसों का नाश कर देते थे। लंका के राक्षसों का नाश होने का यही कारण था। वर्तमान में भी जो मतिमन्द मानव एवं मूर्ख स्त्रियाँ अपने कल्याण की कामना से अथवा अपने पुत्रों की जीवन रक्षा के निमित्त निरपराध निर्दोष बकरी

और भैंस के बच्चों की दुर्गा काली की मूर्तियों के समक्ष हत्या करवाती है उनके पुत्र अवश्य ही मरते हैं और वंश भी नष्ट होता है।

मैंने भारतवर्ष के सहस्रों मन्दिर देखे हैं। मुझे भली-भाँति ज्ञात है कि पशुबलि देने वालों के नेताओं का वंश नष्ट हो जाता है। जिन-जिन राजाओं के राज मन्दिरों में पशुबलि होती थी उनके राज्य नष्ट हो गये हैं। जिन राजाओं द्वारा अधिक संख्या में पशुबलि कराई जाती है उनका तो वंश ही नष्ट हो जाता है। मैंने बड़े-बड़े राजा, महाराजा, जमींदार, भूमिपति, धनकुबेरों को पशुबलि के कारण मिटते देखा है। उनकी सम्पत्ति का नाश होते देखा है। बिहार के बेतिया, गिद्धौर, पथरोल, गावाँ और देव के राजा अत्यधिक पशुबलि के कारण अकाल में ही कालकवलित हो गये। हथवा के महाराजा मांसाहार नहीं करते थे तथा परम वैष्णव थे किन्तु उनके राज्य मन्दिर में पाँच हजार बकरे कटते थे इसी कारण उनका राज्य भी नष्ट हो गया। राजस्थान मध्यभारत में भी ऐसे अनेक राज्य हैं, जो पशुबलि की अधिकता से मृतप्राय हो चुके हैं।

भारतवर्ष में मारवाड़ी, गुजराती, काठियावाड़ी, कच्छी आदि जो निरामिष भोजी जातियाँ हैं और जो पशुबलि के विरोधी वैष्णव, जैन, आर्य-समाजी, कबीर पंथी, राधास्वामी मत के अनुयायी हैं उनको धन सम्पन्न आनन्दमय देखा जाता है। इसके विपरीत पशुबलि करने वाले माँसाहारी समुदाय हैं जो सदैव दरिद्र, निर्धन, कंगाल रहते हैं। निरपराध मूक पशुओं की देवी-देवताओं के सम्मुख हत्या करके प्रसन्नता प्रदर्शित करने वाले लंका के राक्षस हैं, नीच हैं, नराधम हैं, नर पिशाच हैं, अधम हैं, असुर हैं। पवित्र मन्दिरों को रक्त माँस से भ्रष्ट करने वाले, पापी, पतित, पामर, अधम, अविचारी हैं। भक्ति की ओट में दीन पशुओं की हत्या करने वाले कुटिल, कुचाली, क्रूर हैं, कायर हैं, और सनातन हिन्दू धर्म के कलंक हैं। दुर्गा सप्तशती में लिखा है।

या देवी सर्व भूतेषु दया रूपेण संस्थिता,
मातृ रूपेण संस्थिता, क्षमा रूपेण संस्थिता,
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।

दुर्गा पाठ में दुर्गा माता को दया रूपिणी, क्षमा रूपिणी, शान्ति रूपिणी और माता के रूप में जीव मात्र में विराजने वाली बतलाया है। उसे कहीं भी हत्यारी या डायन नहीं बतलाया गया। जो जगदम्बा हैं जो जगत के प्राणी मात्र की माता हैं, क्या बकरे, भैंसे आदि उनके पुत्र नहीं हैं? यदि पुत्र हैं तो क्या कोई माता अपने ही पुत्रों का भक्षण कर सकती है? हत्यारी और डायन भी अपने पुत्र को नहीं खाती है। अज्ञानी मनुष्यों! बताओ क्या तुम्हारी दुर्दशा नहीं होगी? अवश्य होगी।

(महात्मा रामचन्द्रवीर द्वारा 1950 में लिखा लेख वीरार्चना से संकलित)

✲

पृष्ठ 4 का शेष

समाचार संक्षेप

दलितों के प्रति संगीन अपराध, मार-मीट, अपहरण, बलात्कार-करने वालों में अन्य पिछड़ा वर्ग के लोग अग्रणी पाए गये हैं, परन्तु दुल्हे को घोड़ी से उतारने या अपशब्द बोलने की घटनाएँ हमारे समाज के लोग भी करते हैं। इस बात का कोई औचित्य नहीं कि किसी भी दुल्हे को घोड़ी से उतारा जाए। ऐसी घटनाओं से निहित स्वार्थी लोग, चाहे मतों के लिये या चाहे अन्य स्वार्थ में पूरे वर्ग को हमारे खिलाफ बरगलाते हैं और इस प्रकार हमारी दूरियाँ बढती जाती हैं। हम भी समझें और वे लोग भी समझें तथा सामुहिक प्रयास हो कि न तो अपमान की घटनाएँ हों और न ही झूठे मुकदमे लगें। इसके लिये दलित वर्ग व आदिवासी संगठनों के प्रतिनिधियों से परस्पर संवाद कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

✲

अपना जीवन दूसरों के हित के लिये हो

– ब्रह्मलीन श्रीजयदयालजी गोयन्दका

संसार में शिक्षा देने वालों की कमी नहीं है, परन्तु उसी पुरुष की शिक्षा का असर हो सकता है जो स्वयं उस बात का पालन करे। मैं किसी को विवाह शादी में कम खर्च करने के लिये कहूँ, यदि स्वयं वैसा नहीं करता तो असर नहीं होगा।

मैं सन्ध्या-गायत्री के लिये कहूँ, किन्तु स्वयं पालन न करूँ तो कुछ असर नहीं पड़ेगा। शास्त्र की आज्ञा है जो बात स्वयं पालन करे वही कहनी चाहिये, उसका ही असर पड़ता है।

बहुत उच्च श्रेणी के पुरुष होते हैं, उनके व्यवहार का दूसरों पर असर पड़ता है, वे चाहे मौन ही रहें। संसार में ऐसे बहुत-से संत हैं, जो गुफा में ही बैठे रहते हैं। वे वहाँ बैठे हुए भी दुनिया का उपकार करते हैं। अच्छी बात किसी में हो, उसे ग्रहण कर लेना चाहिये।

वृक्ष हमें शिक्षा दे रहे हैं, छाया देते हैं, दातुन तोड़ लो मना नहीं करते। इनसे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हमारे अधिकार में जो चीज है, उसे कोई भी काम में ले ले। हम लोग वटवृक्ष के नीचे बैठते हैं, छाया मिलती है, वह किसी से कुछ नहीं माँगता। कोई इसमें जल डालता है, कोई नहीं, वह तो सबको समान भाव से छाया देता है। ऐसे ही हमें निष्काम भाव रखना चाहिये। बहुत-से वृक्ष फल देते हैं बदले में कुछ नहीं चाहते। इनमें सहनशक्ति कितनी है, ऐसे ही हमें सहनशक्ति धारण करनी चाहिए।

हम देखते हैं छोटे-छोटे पौधे हम लोगों को कितनी शिक्षा दे रहे हैं। उनका शरीर दूसरों के लिये ही है। हम लोगों को भी अपना शरीर दूसरों के लिये ही समझना चाहिये। जो दूसरों के लिये जीता है, उसी का जीवन धन्य है।

पौधे हमारे देखते-देखते बढ़ते हैं, फिर गिर जाते हैं। हमें शिक्षा लेनी चाहिये कि हमारा शरीर भी उसी तरह उत्पन्न होता, स्थित होता और अन्त में मर जाता है। सारे पदार्थ हमें शिक्षा दे रहे हैं, हमें अपना कर्तव्य सोचना चाहिये कि हमारा क्या कर्तव्य है?

संसार में कोई भी चीज हो उससे शिक्षा लेनी चाहिये। वर्तमान में हममें बुरी आदतें हैं, बुरा भाव है, उसे हटाना चाहिये। जो चीज जिसमें अच्छी हो उससे ग्रहण करनी चाहिये। अच्छे पुरुषों की जीवनी, दर्शन और गुणों से हमें शिक्षा मिलती है, वे तो शिक्षालय ही हैं।

चादर से हमें शिक्षा मिल सकती है। जिसकी चादर है वह सिर पर रखे, चाहे पैरों में रखे वह कुछ नहीं कहती। चाहे फाड़ो, आग में डाल दो कुछ नहीं बोलती, अपने-आपको अपने मालिक को सौंप रखा है। यह शिक्षा दे रही है कि जैसे मैं अपने स्वामी की शरण हूँ यही शरण का भाव है। जहाँ तक अपना अधिकार है, वह सब कुछ भगवान् के अर्पण कर देना, भगवान् के काम में ही लगा देना है।

कठपुतली ने अपने-आपको सूत्रधार के अर्पण कर रखा है। हमें भी अपने-आपको परमात्मा के अर्पण कर देना चाहिये। वे जो कुछ करें, उनकी सारी क्रिया में मौन रहना चाहिये। उनके नाम-गुणों का कीर्तन, भजन, स्मरण, ध्यान भी करना चाहिये। कठपुतली यह नहीं कर सकती। हमें यह विशेष करना चाहिये। गीता में भगवान् ने बताया है-

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्नयस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चितः सततं भव।।

(18/57)

सब कर्मों को मन से मुझ में अर्पण करके तथा समबुद्धि रूप योग को अवलम्बन करके मेरे परायण और निरंतर मुझमें चित्तवाला हो।

इसी प्रकार हमें अपने शरीर की तरफ देखकर निर्णय करना चाहिये कि यह किस काम की चीज है। दुनिया में ऐसा कोई काम नहीं जो मनुष्य नहीं कर सके।

चादर तो मनुष्य की ही सेवा कर सकती है। मनुष्य, देवता, भूत, पितर, यक्ष, राक्षस, वृक्ष तथा पशु आदि दुनिया में जितने प्राणी हैं, सबकी सेवा मनुष्य कर सकता है। मनुष्य के अलावा कोई प्राणी ऐसा नहीं कर सकता। मनुष्य-शरीर तुम्हारे हाथ है, यह जब तक तुम्हारे पास है सबकी सेवा करो, सबकी सेवा करना ही महायज्ञ है।

हम लोगों को जो कर्तव्य बताये गये हैं पञ्च महायज्ञ आदि, वे इसी बात का उपदेश देते हैं कि सबकी सेवा करो। बलिवैश्वदेव हम करते हैं। विश्व को बलि देने का नाम बलिवैश्वदेव है, उससे सारे विश्व को भोजन दिया जाता है। अग्नि में आहुति दी जाती है उससे देवता, यक्ष, राक्षस आदि सब तृप्त होते हैं और बलिवैश्वदेव में जो आहुतियाँ भूमि पर दी जाती है, वह अन्न अतिथि को, गौ को दिया जाता है। गौ को देने से सबकी तृप्ति होती है। वह अन्न गौ को देने से सबको पहुँच जाता है।

घृताक्त अन्नाहुतिका पहला मंत्र है- ***'ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम।'***

इसका फल मैं नहीं चाहता हूँ कितना त्याग भरा हुआ है, कितना ऊँचा भाव है, भगवान् की तृप्ति से सबकी तृप्ति हो जाती है।

एक समय दुर्वासा ऋषि दुर्योधन के पास गये, कहा मेरे साथ दस हजार शिष्य हैं, हमारे लिये भोजन तैयार रखना। दुर्योधन ने भोजन तैयार करा दिया। जब-जब दुर्वासा आते भोजन हर समय तैयार मिलता। रात्रि को आते तब भी तैयार मिलता। ऋषि प्रसन्न हो गये, कहा- 'मैं तुम पर प्रसन्न हूँ, क्या चाहते हो?' दुर्योधन ने कहा-जैसे मेरे पास आप आये, इसी प्रकार युधिष्ठिर के पास भी उस समय जायँ, जब द्रौपदी भोजन कर चुके। दुर्योधन ने सोचा वे वहाँ जाएँगे, वे भोजन करा नहीं सकेंगे, शाप दे देंगे तो मामला खत्म हो जाएगा, युद्ध नहीं करना पड़ेगा। दुर्वासा ने कहा ठीक है। वे गये, युधिष्ठिर से कहा हमारे लिये भोजन तैयार करो, हम स्नान करके आते हैं। युधिष्ठिर ने कहा ठीक है। द्रौपदी के पास गये और कहा-दुर्वासाजी आये हैं, द्रौपदी ने कहा मैं तो भोजन कर चुकी। द्रौपदी को एक पात्र मिला हुआ था, उससे जब तक द्रौपदी भोजन नहीं कर ले, चाहे जितने आदमी भोजन कर सकते थे। अब उस पात्र में भोजन नहीं बनाया जा सकता था। द्रौपदी ने एकान्त में जाकर भगवान् से प्रार्थना की, भगवान् वहीं प्रकट हो गये, आते ही कहा मुझे भूख लगी है। द्रौपदी ने कहा प्रभो! मैं भोजन कर चुकी, अब भोजन कहाँ है? भगवान् ने कहा उस पात्र को लाओ। द्रौपदी पात्र लायी और उसे सामने रख दिया। उसमें एक पत्ता साग का लगा हुआ रह गया था। उस पत्ते को लेकर भगवान् ने भोग लगाया और कहा- ***'विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्त्विति यज्ञभुक्'*** (महा. वन. 263/25)। अब तो सारा विश्व तृप्त हो गया। सहदेव को भेजा कि सबको बुला लाओ। भगवान् बैठे हैं अब क्या चिन्ता है। सहदेव नदी पर गये। वहाँ किसी का पता नहीं लगा। सबके पेट भर गये थे। दुर्वासा जान गये कि ये भगवान् के भक्त हैं। यहाँ हमारी दुर्दशा होगी। इसलिये कहा-जल्दी भागो। सहदेव लौट आये, सारी बात कह दी। भगवान् ने कहा-ठीक है जब आवें तब बुला लेना।

परमात्मा की तृप्ति से सबकी तृप्ति हो जाती है। हम लोगों को नित्य बलिवैश्वदेवयज्ञ करना चाहिये और भगवान् को भोग लगाना चाहिये। उससे सारे विश्व की तृप्ति हो जाती है। मनुष्य को क्या करना चाहिये? दूसरों के लिये जीना चाहिए, अपने लिये नहीं जीना चाहिये।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

(गीता 3/13)

यज्ञ से बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर-पोषण करने के लिये ही अन्न पकाते हैं, वे तो पाप को ही खाते हैं।

देवताओं का दिया हुआ भोजन उन्हें बिना दिये करना चोरी है, वह इन्द्रियाराम है, उसका जीना धिक्कार है। इस प्रकार भगवान् ने उसकी बहुत निन्दा की है, जो बिना यज्ञ

किये भोजन करता है। सारे विश्व को भोजन देकर फिर भोजन करने में खर्च एक पैसे का तथा समय तीन मिनट का लगता है, तब भी हम गालियाँ सहें, भगवान् की आज्ञा की अवहेलना करें, यह कहाँ तक उचित है। भगवान् के भोग लगाने में तो सबका अधिकार है।

कोई अतिथि आये, उन्हें अपनी शक्ति के अनुसार सुख पहुँचाये, अतिथि सेवा भी महायज्ञ है। होम करना, हजारों ब्राह्मणों को भोजन करवाना तो यज्ञ है ही, अतिथि-सेवा महायज्ञ है। जो कुछ हम भोजन के लिये लाते हैं, दूसरों को देते-देते वह समाप्त हो जाय, हम भूखे रह जायँ तो वह अश्वमेध यज्ञ में समान है।

अतिथि की सेवा एवं बलिवैश्वदेव-ये महायज्ञ हैं। नित्य प्रति जो तर्पण करता है वह भी महायज्ञ करता है। जैसे बलिवैश्वदेव में सबको अन्न दिया जाता है, इसी प्रकार तर्पण में सबको जल दिया जाता है। यदि कहो क्या उससे सबको जल मिलता है, शास्त्र कहता है-मिलता है। थोड़ी देर के लिये मान लो नहीं मिलता तो हमारा भाव तो पवित्र होता है। सारे संसार को भोजन और जल देकर स्वयं भोजन करना कितन पवित्र भाव है।

हम सन्ध्या करते हैं- ***'पश्येम शरदः शतम्'*** आदि बोलते हैं, सबका कल्याण चाहते हैं, कितना त्याग है, इसीलिये तो यह महायज्ञ है। इसी प्रकार गायत्री में परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, हम सबकी बुद्धि को अपने में लगायें। केवल मेरी ही नहीं, हम सबकी, इसलिये यह भी महायज्ञ है।

हमको सबके लिये अपना जीवन धारण करना चाहिये। वेद भगवान् कहते हैं जो इस प्रकार कर्म करता है, वह लिपायमान नहीं होता। हम माला फेरें, किसके लिये, सबके कल्याण के लिये, इससे बड़ा लाभ होता है। सबका हित हो ऐसा त्याग किया, उसका जो फल हुआ वह भी सबके लिये त्याग दिया, कोई भी अच्छा काम करे, जगत्-जनार्दन के लिये उसका फल अर्पण कर दे, यह निष्कामभाव है, बड़ा ऊँचा भाव है।

हर एक काम में हमें शास्त्रों ने त्याग सिखाया है। आहुति देते हैं ***'न मम'*** इसका यही भाव है-मेरे लिये नहीं। जितने त्याग की शिक्षा हमारे हिन्दू धर्म में दी गयी है, किसी भी अन्य धर्म में नहीं है। हमें त्याग सीखना चाहिये।

यह चद्दर वैराग्य भी सिखाती है। इस चद्दर को देखने से वैराग्य होता है। यह चद्दर अब पुरानी हो गयी, यह शिक्षा दे रही है कि तुम अपने शरीर की पहले की अवस्था का ख्याल करो। अब तुम भी पुराने होते जा रहे हो। जब तक तुम्हारा यह शरीर कायम है, तब तक इससे जो काम लेना हो, सो ले लो।

शास्त्र कहता है जब तक वृद्धावस्था दूर है, जब तक शरीर स्वस्थ है, तब तक जो करना हो कर लो, नहीं तो पश्चाताप करना पड़ेगा। तुलसीदासजी कहते हैं-

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ।।

कबीरदासजी कहते हैं -

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गली, बहुरि न देखै आइ।।
हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखि करि, भया कबीर उदास।।
आजि कि काल्हि कि पचे दिन, जंगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास।।

इसलिये क्या करना चाहिये? बस, भगवान् का भजन करना चाहिये।

राम राम रटते रहो जब लग घट में प्रान।
कबहुँ तो दीनदयाल के भनक पड़ेगी कान।।
केसौ कहि कहि कूकिये, नां सोइयै असरार।
रात दिवस कै कूकणैं, कबहूँ लगै पुकार।।

यदि प्रेम होगा तो विलम्ब का काम नहीं है, जैसे द्रौपदी की सुनी, ऐसे सुन लेंगे। संसार से वृत्तियों को हटाना चाहिये। संसार के पदार्थों को क्षणभंगुर-नाशवान् समझकर इनसे वृत्तियों को हटाकर प्यारे प्रभु में लगाना चाहिए। संसार में जो आनन्द मिलता है, उससे लाखों गुना अधिक आनन्द वैराग्य में है। उससे लाखों गुना

(शेष पृष्ठ 31 पर)

विचार-सरिता

(द्विचत्वारिंशत् लहरी)

- विचारक

विचार द्वारा देखें तो यह बात भलीभाँति समझ में आती है कि इस मृत्युलोक में जितने भी शरीर पैदा होते हैं, उनकी मृत्यु अचानक नहीं होती। मृत्यु तो जीवन का वह छद्मवेशी पहलू है जो जन्म के तत्क्षण ही अपना प्रहार करना शुरू कर देता है। वह ऐसा छद्मवेशी है कि मरने वाला शरीर भी हमें मरता हुआ नहीं दिखता है अपितु वह वृद्धि की ओर अथवा जीने की ओर अग्रसर होता हुआ प्रतीत होता है। जैसे-जैसे उसके प्रारब्ध रूपी प्राणों का क्षय होता जाता है, वह प्राणी मृत्यु की ओर जा रहा है। पर हम अज्ञानी उसके जीवन की वर्षगांठें मना-मना कर हर्षित होते जाते हैं। लगता यह है कि वह साठ वर्ष का बड़ा हो गया, सत्तर, अस्सी या सौ वर्ष का बड़ा हो गया। पर हकीकत यह है कि उस शरीर में जन्म के साथ मरण की प्रक्रिया का यह सौवां साल आ गया। ज्यों ही उसके प्राणों की पूंजी समाप्त होगी तब हम अविचारी लोग उसका मरना मानते हैं।

हाँ यह जीवन का एकमात्र सत्य है कि मृत्यु होती है, जिसे कोई टाल नहीं सकता। किन्तु उस मृत्यु से साक्षात्कार हो, उससे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि मृत्यु होती किसकी है? मृत्यु देह की होती है या आत्मा की? इस प्रश्न की पहेली को यदि हम ठीक-ठीक समझ लेंगे तो मृत्यु के निर्मूल भय से हम मुक्त हो जाएंगे।

हमें जो यह भय लग रहा है कि एक दिन मृत्यु आएगी और मुझे मार डालेगी। इस पर विचार करें कि इस देह की मृत्यु तो होती ही आई है। अनेक जन्मों में हर बार देह ने आकार धारण किया और प्रारब्ध रूपी पूंजी के समाप्त होते ही यह काल का ग्रास बना। अनंत जन्मों की शृंखला में आपने मृत्यु से मुलाकात की पर वह मृत्यु आज तक आपको नहीं मार सकी और आप आज भी वही हो जो अनंत मौतों के साक्षी बनकर ज्यों के त्यों विद्यमान हो। काल के अधीन इस देह का जन्म होता है और काल के अधीन ही इस देह की मृत्यु होती है। यह पंच-भौतिक देह तो हमारे स्वरूप का स्थूल-आवरण मात्र है। मन सहित ज्ञानेन्द्रियाँ व प्राण हमारे स्वरूप के सूक्ष्म आवरण हैं। लेकिन दोनों के साक्षीत्व में जो आप हो, उस अमर आत्मा की मृत्यु के बारे में सोचना भी नासमझी होगी।

आदमी को इस मत्यु शब्द ने बहुत डराया है। मृत्यु के कारणभूत हिंसक जीव जन्तुओं से जो भय है उसके पीछे मूलरूप में मरण का भय है। निर्भय होने की इस बेला में भी हम यदि भय से ग्रसित होकर शरीर की मृत्यु को ही अपनी मृत्यु मान बैठे तो बहुत बड़ा धोखा होगा। अमूल्य नर तन पाकर भी यदि हम दृश्य की परिणिति को अपनी परिणिति मान बैठे तो यह अमूल्य जीवन निरर्थक चला जाएगा।

अज्ञानवश अनेकों जन्म बेकार चले गए पर अब हमें वास्तविक जानकारी से रूबरू होना है और होश में जीवन जीना है। बेहोशी का जीवन कोई जीवन नहीं होता, जीवन तो उसी का नाम है जिसमें मनुष्य को चेत आ जाय। अब अज्ञान की निद्रा को तोड़कर ज्ञान की जाग्रति में जीवन जीना है। अनेकों जन्मों की रात्रि समाप्त हुई और मनुष्य जन्म की भोर हो गई है। अत: अब सोने का समय नहीं अपितु जागने का समय आया है। जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है। जो सोवत है सो खोवत है, जो जागत है सो पावत है। नींद-नींद में तो अनेकों जन्म खो दिए। वे सब रात्रि में चले गए। अब मनुष्य-जन्म रूपी भोर हाथ लगी है, अत: अब सोना नहीं जागना है। घणा दिन सो लियो रे, अब जाग मुसाफिर जाग।

बहुत बार यह देह मिला और छूटा। परिवार, पदार्थ मिले और छूटे पर आप वो के वो। जब तक सदा रहने वाले अपने आत्मस्वरूप को हम नहीं जान पाएंगे, तब

तक मृत्यु का भय सताएगा। हमारी समस्त ज्ञानेन्द्रियों की बनावट बाहर के विषयों की ओर दौड़ने की है। मन भी इनके साथ लगकर इनके झरोखों से ही शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध में ही डूबा रहता है। इन समस्त करणों को यह पता नहीं कि हमको विषय का ज्ञान कराने की शक्ति कहाँ से मिल रही है। हमारे विषयों का प्रकाशक कौन है जिसके प्रकाश से ये सब जाने जाते रहे हैं। इसके लिये हमें भीतर में उतरने की यात्रा करनी होगी। जब तक हम भीतर में नहीं उतरेंगे तब तक निर्भयता हाथ नहीं लगेगी।

हकीकत तो यह है कि मृत्यु एक धोखा है, फरेब है। अब तो विज्ञान ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि इस ब्रह्माण्ड में मरता कुछ नहीं है। हाँ रूप अवश्य परिवर्तित होता है। जगत रूपी रंगमंच पर मुखौटे बदलते हैं। व्यक्ति नहीं बदलते। नाटक के अभिनय में जब एक युवक दुल्हा बनकर आता है तो काली मूंछें, हाथ में तलवार और शेरवानी में बड़ा अकड़कर चलता है। पर्दा गिरता है तो थोड़ी देर में वही युवक सफेद दाढ़ी का मुखौटा लगाकर हाथ में लाठी लिये हुए लड़खड़ाता हुआ चलता है तो हम यह पहचान भी नहीं पाते हैं कि यह फकीर वेश में जो बुढ़ा है, यह वही युवक है जो थोड़ी देर पहले दुल्हा बनकर आया था। ऐसे ही इस जगतरूपी नाट्यशाला में यह शरीर बदलता है। आकार व आकृति बदलती है पर आपका स्वरूप वह का वह ही रहता है।

विज्ञान कहता है कि धूल का एक कण भी हम यदि मिटाना चाहें तो वह मिट नहीं सकता। इसके सूक्ष्म से सूक्ष्मतर टुकड़े किये जा सकते हैं पर उसका अस्तित्व मिटाया नहीं जा सकता। अणु से परमाणु, न्यूट्रोन, इलेक्ट्रोन, प्रोटोन आदि जो हैं वह सब उस कण के परिवर्तित रूप हैं। नया कुछ नहीं बना है। इससे यह सिद्ध होता है कि देह भी मरती नहीं अपितु उसका आकार बदल जाता है। गर्भ में जो है, वह जन्म के समय नहीं रहा। गर्भ मरा तो जन्म हुआ। जन्म के मरने से जो परिवर्तन हुआ उसे बाल्यकाल कहा गया। बाल्यअवस्था के मरने से युवावस्था का जन्म हुआ। इसी तरह अब युवावस्था का मुखौटा उतर गया और बुढ़ापे का मुखौटा लग गया। शरीर पर मुखौटे नए-नए लग रहे हैं जिससे आकृति परिवर्तित हो रही है पर जो गर्भ में था वह आज बुढ़ापे में भी मौजूद है। ऐसे ही जिसे हम अज्ञानी मृत्यु कहते हैं वह भी इस पंचभौतिक देह का परिवर्तित रूप है। ज्यों ही इस स्थूल काया से प्राणों व सूक्ष्म-देह का विछोह होता है तो यह स्थूल-देह जड़ी भूत हो जाता है और इसका दाह करते ही पाँचों महाभूत की क्रिया कारणरूप में परिवर्तित हो जाती है। वहाँ केवल कार्यरूप आकृति का परिवर्तन हुआ, कारण रूप से सभी महाभूत अपने कारणरूप में विद्यमान रहे।

इसलिए मृत्यु जैसे अवास्तविक शब्द की व्याख्या करने से पूर्व यदि हम यह जान सकें कि जीवन क्या है? जीवन जीने की कला यदि हमें आ जाय तो मृत्यु अपने आप असत्य सिद्ध हो जाएगी। एक सन्त के पास एक जिज्ञासु गया और उसने पूछा कि हे महात्मन्! मुझे जीवन और मृत्यु के बारे में जानने की जिज्ञासा है। क्या इस विषय में आप कुछ बता सकेंगे? सन्त मुस्कुराए और कहा कि जीवन क्या है यह तो मैं भलीभाँति जानता हूँ क्योंकि मैंने जीवन को जीया है, परन्तु मृत्यु के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है, क्योंकि मैं आज तक कभी मरा नहीं। अनेकों शरीर मिले और बदल गए पर मृत्यु से कभी मुलाकात हुई ही नहीं इसलिये मैं नहीं जानता कि मृत्यु क्या है? आगे महात्मन् बोले कि जीवन के बारे में जानने की जिज्ञासा है और अवकाश है तो मेरे पास बैठो पर मृत्यु जैसे झूठे शब्दों पर व्याख्या करने का मेरे पास कोई अवकाश नहीं है।

फिर महात्मन् ने एक दृष्टांत सुनाया कि-एक बार अंधकार ने परमात्मा के पास जाकर शिकायत की कि भगवन् मैं अब सूरज से परेशान हो चुका हूँ। यह अनंतकाल से मेरे पीछे पड़ा है। भोर होते ही यह मेरे द्वार पर दस्तक देता है और दिन भर मुझे परेशान करता है। मैं उससे दिन भर संघर्ष करता हूँ पर हर बार हार मेरी

होती है और मैं थका मांदा रात में थोड़ा विश्राम करता हूँ कि दूसरे दिन फिर सूरज मुझे परेशान करने के लिए मेरे दरवाजे पर आ खड़ा होता है। भगवन् मेरी इस पीड़ा को समझते हुए आप सूर्य को समझा दें कि वह मेरा पीछा करना अब बंद कर दे ताकि मैं अपना कार्य स्वतंत्र रूप से दिन में भी कर सकूँ।

भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम अंधकार को परेशान करना छोड़ दो। क्योंकि वह तुमसे बहुत परेशान और दु:खी है। तुमसे संघर्ष करते-करते वह अब थक चुका है अत: उसे ज्यादा सताना ठीक नहीं। सूरज ने कहा-प्रभु! आप उसे सताने की बात तो करते हो पर मेरी तो कभी उससे मुलाकात भी नहीं हुई। मैंने आज तक कभी अंधकार को देखा तक नहीं। यदि उसे मेरे से कोई परेशानी है तो कृपया आप उसे मेरे समक्ष बुला लीजिये ताकि मैं उसे पहचान सकूँ कि वह कैसा है और उससे मेरे द्वारा हुई परेशानी के लिये क्षमा भी माँग लूंगा। भविष्य में ऐसी भूल नहीं करूंगा कि मेरे कारण से उसे कोई पीड़ा पहुँचे।

जिस प्रकार अंधकार और सूर्य का आमना-सामना संभव नहीं क्योंकि सूर्य के होते हुए अंधकार का कोई अस्तित्व ही नहीं। ऐसे ही जीवन के साथ मृत्यु का कोई अस्तित्व भी नहीं। मृत्यु तो उन भटके हुए अज्ञानी लोगों का भ्रम मात्र है जिन्हें जीना आया ही नहीं। जो जीना जानते हैं, जीना जिन्होंने सीख लिया है वे मृत्यु जैसी झूठी बातों पर ध्यान ही नहीं देते। इस संसार में बहुत-सी काल्पनिक और अयथार्थ बातें चल पड़ती हैं ऐसे ही मृत्यु भी उनमें से एक अयथार्थ बात ही तो है। जिस प्रकार सूर्य और अन्धकार दोनों एक साथ नहीं रह सकते ऐसे ही जीवन और मृत्यु भी एक साथ कैसे रह सकते हैं।

मनुष्य की यह विडम्बना है कि वह जीवन की उस सत्ता से अपरिचित है जिससे कि हम जीवित हैं। उस जीवन-सत्ता से अपरिचित होने के कारण ही वह मृत्यु जैसी बेबुनियाद सत्ता से भयभीत है। हम जो हैं, हमारा जो होना है, उसे यदि हम जान जाएँ तो जो 'नहीं है' उससे कभी भयभीत हो ही नहीं सकते। हमारा जीवन तो अमृत है। हमें यह ज्ञातव्य हो जाय कि हम जीवन हैं तो फिर मृत्यु की भ्रान्ति सदा-सदा के लिये मिट जायेगी। जैसे सूर्य के प्रकाश में कभी भी अन्धकार को नहीं देखा जा सकता ऐसे ही हमारे जीवन से हम ज्ञातव्य हो जाएँ तो कभी भी मृत्यु के बारे में जानने की चेष्टा कर ही नहीं सकते। क्योंकि मूलत: जो है ही नहीं उसके बारे में जानोगे कैसे। आप अमृत रूप से सदैव हो और वही आपका जीवन है। यह यदि हम ठीक-ठीक जान पाएँ तो समझिये कि जीवन जीना आ गया। यह अमृत है जिसे जानने मात्र से हममें अमरत्व उतर जाता है। यह जीवन जीने की कला यदि नहीं आई तो हम जीवित नहीं मरी हुई लाशें हैं। मृत्यु के भय का एक ही अर्थ है कि अभी हम अपने जीवन से अपरिचित हैं।

नींद और बेहोशी में आदमी को पता ही नहीं चलता कि वह ''है''। उसके होने का अहसास तो जागने पर ही होता है कि मैं अभी तक जिन्दा हूँ। जिस प्रकार आदमी नींद में मर जाता है और उसे अपने होने का ख्याल ही नहीं रहता, ऐसे ही अपने स्वरूप के अज्ञान के कारण हम हमारे अमृत्व से अनभिज्ञ हैं। कहने को तो हम कह देते हैं कि-हम बोल रहे हैं, सुन रहे हैं, चल रहे हैं, खा रहे हैं, पी रहे हैं अर्थात् हम होश में हैं तभी तो यह हो रहा है। विचार करें-एक शराबी भी बोलता है, चलता है, खाता है, पीता है। एक पागल भी जीवन की सामान्य क्रियाएँ कर लेता है पर क्या उन दोनों को हम होशमय जीवन जीना कहेंगे? कदापि नहीं। कई बार मैंने देखा है-हमारे एक नौकर था जो नींद में बोलता था। बड़बड़ाता था। गालियाँ देता था पर उसकी उन बातों पर हमें हँसी आती थी और जगने पर जब उससे पूछते तो वह कहता कि मुझे तो कोई होश ही नहीं कि मैं नींद में बातें भी करता हूँ। विद्यार्थी जीवन-काल में हमारे छात्रावास में एक सहपाठी रात को नींद में उठ खड़ा होता। दरवाजा खोलकर बाहर सड़क पर आ जाया करता था। एक बार तो रात को करीब दो बजे वह नींद में कमरे से बाहर आया और जागरण का घण्टा

ठोकने लगा। बहुत से विद्यार्थी बाहर आए, अधीक्षक ने जाकर उसे झकझोरा तब जाकर उसकी नींद टूटी और वह होश में आया।

ऐसे लोगों द्वारा अर्द्धचेतना में किए गये कार्य का कोई जीवन-शैली में महत्त्व नहीं है। हमें भी जब तक पूर्ण जागृति अर्थात् स्वरूपानुसंधान में पूर्ण जागृति नहीं आई है तब तक हम भी बेहोशी का जीवन जी रहे हैं। जीवन जीने की सही कला सीख ली होती तो मृत्यु जैसी झूठी बात के बारे में कभी भी चिंतित होने की आवश्यकता ही नहीं होती। हमारे तथाकथित धर्म-गुरुओं ने संभवतया मृत्यु की कहानी इसलिए गढ़ी होगी कि शायद मृत्यु के भय से वह जीवन जीने की कला जल्दी सीख जाएगा। जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त मृत्यु की कथा एक दु:ख की कथा है। वहाँ आनंद और निर्भयता का एक क्षण भी उपस्थित नहीं होता। खबर भी नहीं मिलती कि आनंद क्या है? ऐसे आदमी को होश में कैसे कहा जा सकता है। जीवन पर्यन्त वह दु:खमय जीवन व्यतीत करके मृत्यु के साये में घिरा हुआ अपनी जीवन-लीला की इतिश्री कर लेता है। क्या इसी का नाम जीवन है? यदि यही जीवन है तो समझ लेना चाहिये कि वह जी तो रहा है पर जीवन किसे कहते हैं, यह उसने अभी जाना ही नहीं।

विचार करें कि हम जिस परिवेश में रह रहे हैं वहाँ हमारे चारों ओर ऐसे ही सोये हुए लोगों की भीड़ है। हम मृत्यु से डरे हुए लोगों से घिरे हुए हैं। इसलिए हमें पता ही नहीं कि जागने का अर्थ क्या हो सकता है। कभीकभार हम सोये हुए लोगों के बीच कोई एक जगा हुआ महापुरुष आ भी जाता है तो हम उसे पागल की संज्ञा देकर उससे दूरी बनाए रखते हैं। उसे गालियाँ देंगे, पत्थर मार-मार कर उसे नगरी से बाहर निकालने का प्रयास करेंगे। इतना ही नहीं उसे मार डालने की योजना बनाकर उसे मार डालने में ही अपनी बुद्धिमत्ता मानेंगे। इसीलिए तो जीसस को क्रोस पर चढ़ा दिया। सुकरात को जहर पिलाकर मार डाला। मनसूर को सूली पर लटका दिया। कबीर और बुद्ध के पास वैश्याओं को भेजकर उन्हें कलंकित किया गया क्योंकि वे होश वाले अकेले व्यक्ति थे जो बेहोशों की जमात में आ गए थे।

इसीलिए तो जो जाग्रत हुए महापुरुष हैं वे हिमालय आदि की पहाड़ियों की कंदराओं में छिपकर बैठे हैं और अपने होशमय जीवन के सागर में आनंद की लहरों से सराबोर हैं।

एक कथा सुनी है कि किसी नगर में एक जादूगर आया और उसने नगर के एकमात्र सार्वजनिक कुए में कुछ पानी को अभिमंत्रित करके कुए में उड़ेल दिया और नगरवासियों को कहा कि कोई इस कुए का पानी मत पीना, नहीं तो पानी पीते ही मदहोश और पागल हो जाओगे। लोगों की मजबूरी थी, आसपास कोई जल का स्रोत था नहीं और प्राण बचाने के लिये सभी नगरवासियों ने एक-एक करके उस कुए के पानी को पी लिया। पानी पीने के कारण सभी पुरवासी पागल हो गए। राजा के महल के भीतर एक छोटा कुआ था जिससे राज-परिवार व राजदरबारी पानी पीते थे। राजा को खबर लगी कि पूरा शहर पागल हो गया है और पहरेदार, सैनिक आदि सभी नगरवासियों ने राजमहल को घेर रखा है। वे सभी लोग एक ही सुर में बोले जा रहे थे कि हमारा राजा पागल हो गया है और ऐसे पागल को राजा होने का कोई अधिकार नहीं अत: उसे हटाकर हममें से किसी समझदार को राजगद्दी पर बैठाया जाय।

राजा घबराया और मंत्रियों की आपातकालीन बैठक ली और पूछा कि इन पागलों से कैसे पिण्ड छुड़ाया जाय। गहन विचार-विमर्श के बाद मंत्रियों ने कहा-राजा साहब अब तो हमें भी उस कुए के पानी को पीने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं लगता अत: यदि हमें इन पागलों से बचना है तो वह पानी पी लेना चाहिये। महल के पिछले गुप्त दरवाजे से राजा, राणियाँ, राजपरिवार व मंत्रीगण आदि सभी भागे और जाकर उस सार्वजनिक कुए का पानी पीया। पानी पीते ही राजा व राजदरबारी भी उसी पागलपन के नशे में चूर थे। अब राजा भी पूरी प्रजा को समझदार समझ रहा था और प्रजा भी राजा को। अत: कहीं कोई टकराव व दुविधा नहीं थी।

जीवन की वास्तविकता के अज्ञान के पागलपन के कारण हम अपने आप से बेखबर होकर बेहोशी के जीवन को ही जीवन-शैली समझकर रीते के रीते ही रह जाते हैं। अज्ञान के पागलपन को ही जीवन-शैली समझकर जैसे आए थे, वैसे के वैसे ही इस मुखौटे को उतारकर फिर किसी दूसरे मुखौटे को पहन लेते हैं। अभी हम हमारे इस पंचभौतिक देह को बाहर से देख रहे हैं और पागलों की जीवनशैली को ही जीवन-शैली समझ रहे हैं। बस यही गड़बड़ है। जब तक हम इस शरीर के भीतर उतरकर अमृतपुञ्ज को नहीं जान लेंगे जो सब कुछ बदलते देखकर भी कभी नहीं बदला, तब तक हमें जीवन क्या है? और मृत्यु क्या है? इसका बोध नहीं होगा। बोधस्वरूप हमारी आत्मा है जिसमें वृत्ति की स्थिति करने पर हमें सब ज्ञातव्य हो जाएगा जिसको ज्ञात करने की हमारी चाहना थी।

राजमहल के परकोटे व राजमहल की दीवारों को देखने से राजमहल के सौंदर्य से हम कैसे परिचित हो सकते हैं। राजमहल के सौंदर्य को पाने के लिये राजमहल के भीतर प्रवेश करना होगा। ऐसे ही देह के भीतर में उतरने की कला को सीखकर जब हम भीतर के सौंदर्य को देखेंगे तो हमें पता चलेगा कि हमारी चेतना सत्ता के सौंदर्य के समक्ष प्रकृति के समस्त सौंदर्य फीके हैं। मैं उन महापुरुषों के चरणों में श्रद्धावत नमन करता हूँ जिन्होंने बेहोशी को तोड़कर होश की जिन्दगी जीने की कला सीख ली है और सदैव अपने स्वरूपानुसंधान में जगे हुए रहते हैं। *ओम् शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!*

फार्म-4 (नियम-8)

1.	प्रकाशन स्थान	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
4.	प्रकाशक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर-302 012
5.	सम्पादक का नाम	:	लक्ष्मणसिंह
	नागरिकता	:	भारतीय
	क्या विदेशी हैं	:	नहीं
	पता	:	ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार व हिस्सेदार हों।	:	पूर्ण स्वामित्व-श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर

मैं एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

1-4-2019 **लक्ष्मणसिंह**

प्रकाशक

प्रेरक कथानक

– संकलित

बाल्यकाल से ही एक महात्मा भजन में अनुरक्त थे। आयु पचहत्तर-अस्सी की हो चली थी। भाविकों ने गाँव के बाहर तालाब के किनारे एक कुटिया का निर्माण उनके लिये कर दिया। उस शान्त एकान्त कुटीर में वह महात्मा अपने विगत जीवन का अनुशीलन करते तो उनके मुख से सहसा यह वाणी ध्वनित होती-''हूँ, अगली नीक, पिछली नीक, बिचली नाहीं नीक।'' उनके मुख से ये शब्द प्राय: प्रस्फुटित हो जाया करते थे।

तालाब था ही। तीन ग्रामीण महिलाएँ जल भरने वहाँ आयीं और महाराजजी के मुख से ऐसा शब्द सुना तो उन्हें आश्चर्य हुआ। उन्होंने आक्षेप किया-''बाल पक गये, दाँत गिर गये किन्तु अभी यह सांसारिक गणित ही लगा रहे हैं।'' अपनी बुद्धि के अनुसार उन्होंने आगे वाली को पीछे तथा मध्यवाली को आगे करके देखा किन्तु महाराजजी की वाणी के शब्द यथावत रहे। वे समझ तो गयीं कि महाराजजी का हम लोगों से कोई प्रयोजन नहीं है, फिर भी उन्होंने परिजनों से उल्टा-सीधा कह सुनाया।

आवेश के वशीभूत ग्राम्यजन लाठी लेकर चले कि ऐसा कौन साधु आ गया? अपने ही गुरु महाराजजी को पाकर वे ऊहापोह की स्थिति में कुटिया के पृष्ठभाग में चुपचाप बैठ गये। अकस्मात् महाराजजी के मुख से वही वाक्य ध्वनित हुआ। लोग उनके समक्ष प्रणत हुए, निवेदन किया-''आजकल आप यह कौन-सा मंत्र जपने लगे हैं महाराजजी! इसका आशय बताने की कृपा करें।''

उन महात्मा ने बताया-''बेटा! जीवन की तीन अवस्थाएँ होती हैं-बचपन, यौवन और वृद्धावस्था। हम बाल्यकाल से ही साधु हैं। बचपन का समय अच्छा व्यतीत हुआ। गुरु महाराजजी की सेवा में मन लगा। भजन होता रहा। अब वृद्धावस्था भी सन्तोषजनक है, शान्ति है। भजन में कोई संकल्प-विकल्प की आवृत्ति नहीं होती; किन्तु बीच में युवावस्था में व्यवधान अधिक आये। वह तो गुरु महाराजजी की दया, कृपा थी अन्यथा रोने को आँसू भी न मिलते। इसीलिए मैं कहता हूँ कि भजन के लिये अगली अर्थात् बाल्यावस्था उत्तम है, पिछली वृद्धावस्था भी संतोषजनक है किन्तु बिचली अर्थात् युवावस्था तो संघर्ष में ही बीता, वह ठीक नहीं है। यह तो असिधारा तुल्य है। लोहे के चने चबाने जैसा है। इसे पार करने में सदैव सावधानी अपेक्षित है। समर्पण के साथ लगने का विधान है।''

ग्रामीण श्रद्धालुजनों ने उन महिलाओं का मनोभाव कह सुनाया। महात्मा हँसे और बोले-, ''हमने तो उन्हें देखा ही नहीं। उनसे कहो कि भजन किया करें, तभी कल्याण है।''

✲

पृष्ठ 14 का शेष

राणा सांगा

सुल्तान मुजफ्फर शाह गुजराती ने सुल्तान महमूद की अपनी शरण में आने पर मदद की थी परन्तु राणा सांगा ने तो युद्ध में विजय पाने और सुल्तान को कैद करने के पश्चात उसे उसका राज्य प्रतिष्ठा के साथ पीछा दिया।''

गुजरात का टांक वंशी सुल्तान सदैव महाराणा से लड़ा तथा हर बार हारा। परन्तु उसका द्वितीय पुत्र शाहजादा बहादुर खाँ (बहादुर शाह) जब महाराणा की शरण में आया तो उसे पुत्रवत् स्नेह तथा सम्मान के साथ अपने यहाँ आश्रय दिया।

मालवा विजय के उपलक्ष में महामहिम महाराणा ने केसरिया चारण हरिदास को छत्र चामर ढुलाकर मेवाड़ का समस्त राज्य दे डाला, परन्तु हरिदास ने राज्य वापिस महाराणा के नजर कर दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थान के एक हजार वर्ष के समय में राणा सांगा जैसा व्यक्तित्व वाला महापुरुष पैदा नहीं हुआ।

✲

बोधकथा

भाग्य व बुद्धि

– संकलित

एक दिन एक स्थान पर भाग्य व बुद्धि की मुलाकात हो गई। दोनों बैठकर बातें करने लगे। बातें करते-करते उनमें बहस छिड़ गई। भाग्य ने कहा,-''मैं बड़ा हूँ। अगर मैं साथ न दूं तो आदमी कुछ नहीं कर सकता। मैं जिसका साथ देता हूँ, उसकी जिन्दगी बदल जाती है। उसके पास बुद्धि हो या न हो।''

बुद्धि ने कहा,-''मेरे बिना किसी का काम नहीं चल सकता। बुद्धि न हो तो केवल भाग्य से कुछ नहीं बनता।'' आखिर उन दोनों ने फैसला किया कि खाली बहस करने के बजाय अपनी-अपनी शक्ति का प्रयोग करके देखते हैं। पता लग जाएगा कि कौन बड़ा है।

वे दोनों एक किसान के पास गए। किसान गरीब था। अपनी कुटिया के बाहर बैठा अपनी किस्मत को रो रहा था। भाग्य ने कहा,-''देखो, इस किसान के पास बुद्धि नहीं है। मैं इसका भाग्य बदलता हूँ। यह खुशहाल और सुखी हो जाएगा। तुम्हारी जरूरत ही नहीं पड़ेगी।''

किसान की कुटिया के साथ ही उसका एक खेत था। उसमें उसने ज्वार बो रखी थी। बालियाँ आ ही रही थी। इस बार उसने बालियों को निकट से देखा। बालियों में ज्वार के स्थान पर भाग्य के प्रताप से मोती लगे थे। बुद्धिहीन किसान ने अपना माथा पिटा,-''अरे इस बार तो सत्यानाश हो गया। ज्वार के स्थान पर ये कंकड़-पत्थर जैसे भला क्या उग आए हैं?''

वह रो ही रहा था कि उधर से उस राज्य का राजा और उसका मंत्री गुजरे। उन्होंने दूर से ही वह ज्वार की खेती देखी। मोतियों की चमक देखते ही पहचान गए। दोनों बग्घी से उतरे और निकट से देखा। वे तो सचमुच के मोती थे। दोनों बोले कि यह इतना धनी किसान है जिसके खेत में मोती ही मोती उगते हैं। मंत्री ने किसान से कहा,-''भाई हम एक बाली तोड़कर ले जाएँ?''

किसान बोला,-''एक क्या सौ-पचास उखाड़ लो। पत्थर ही पत्थर तो लगे हैं इनमें।''

राजा ने मंत्री को कोहनी मारकर कान में कहा,-''देखो, कितना विनम्र है यह। अपने मोतियों को पत्थर कह रहा है।''

मंत्री ने कहा,-''और दिल भी विशाल है। हमने एक माँगा और यह सौ-पचास ले जाने के लिये कह रहा है।''

वे दो बालियाँ तोड़कर ले गए। बग्घी में बैठे राजा ने मोतियों को हाथ में तोलते हुए कहा,-''मंत्री, हम राजकुमारी के लिये योग्य वर ढूंढ रहे थे न। दूर क्यों जाएँ? यह किसान जवान है, धनी है और कितना बड़ा दिल है इसका। मोतियों को पत्थर कहता है,क्या ख्याल है?''

मंत्री बोला,-''महाराज, आपने मेरे मुँह की बात छीन ली।''

मंत्री बग्घी से उतरकर किसान के पास गया। उसने किसान के हाथ पर एक अशर्फी रखकर कहा,-''युवक, हम तुम्हारा विवाह राजकुमारी से तय कर रहे हैं।''

किसान घबराया, ''न......नहीं मालिक! मैं एक निर्धन किसान और........।''

मंत्री समझा कि विनम्रता के कारण ही वह ऐसा कह रहा है। उन्होंने उसकी पीठ थपथपा कर चुप करा दिया।

राजा के जाने के बाद किसान ने लोगों को बताया कि उसकी शादी राजकुमारी से तय हो गई है। सब हँसे। एक ने कहा,-''अरे बेवकूफ, यह शायद तुझे मरवाने की चाल है। हम तो तेरे साथ नहीं चलने के, कहीं हम भी न मारे जाएँ। अकेले ही अपनी बारात ले जाइयो।''

किसान को अकेले ही जाना पड़ा। राजा ने इसका बुरा नहीं माना। मंत्री ने उसे अपने घर ठहराया। वहीं से उसकी बारात गई और धूमधाम से राजकुमारी से उसकी शादी हो गई।

शादी हो जाने के बाद राजा ने दामाद को महल का ही एक भाग दे दिया। राजा के कोई पुत्र नहीं था, अत: वह दामाद को अपने पास ही रखना चाहता था ताकि राजसिंहासन भी बाद में उसे ही सौंप सके। राज

परिवार की परम्परा के अनुसार राजकुमारी वधु के वेष में सज-धजकर खाना लेकर रात को अपने पति के कक्ष में गई। किसान ने इतनी सुन्दरता से सजी और आभूषणों से लदी कन्या सपने में भी नहीं देखी थी। वह डर गया। उसके मूर्ख दिमाग में अपनी दादी की बताई कहानी कौंध गई, जिसमें एक राक्षसी सुन्दरी का वेष बनाकर गहनों से सजी-धजी एक पुरुष को खा जाती थी। उसने सोचा कि यह भी कोई राक्षसी है, जो उसे खाने के लिये आई है।

वह उठा और राजकुमारी को धक्का देकर गिराता हुआ चिल्लाता बाहर की ओर भागा। भागता-भागता वह सीधे नदी किनारे पहुँचा और पानी में कूद गया। उसने सोचा कि राक्षसी का पति होकर जीने से अच्छा मर जाना होगा।

राजकुमारी के अपमान की बात जानकर राजा आग बबूला हो गया। राजा के सिपाहियों ने किसान दुल्हे को डूबने से पहले ही बचा लिया। उधर राजा ने आदेश जारी कर दिया कि दूसरे दिन उसे मृत्युदण्ड दिया जाएगा।

बुद्धि ने भाग्य से कहा,-''देखो, तेरा भाग्यवान बुद्धि के बिना मारा जाने वाला है। अब देख मैं इसे कैसे बचाती हूँ।'' इतना कह बुद्धि ने किसान में प्रवेश किया। किसान को राजा के सामने पेश किया गया तो किसान बोला,-''नरेश, आप किस अपराध में मुझे मृत्युदण्ड देने चले हैं? मेरे कुल में मान्यता है कि विवाह के पश्चात पहली रात को यदि वर-वधु की जानकारी में कोई व्यक्ति नदी में डूब मरे तो वधु या तो विधवा हो जाती है या संतानहीन रह जाती है। जब मेरी पत्नी मेरे कक्ष में आई तो नदी की ओर से मुझे 'बचाओ-बचाओ' की पुकार सुनाई दी। मैं अपनी रानी पर किसी अनिष्ट की आशंका से काँप उठा और उठकर डूबने वाले को बचाने के लिये भागा। आप मुझे कोई भी दण्ड दें, मैं अपनी पत्नी के लिये कुछ भी करूंगा।''

उसकी बात सुनते ही राजा ने उठकर किसान को गले लगा लिया। पिता-पुत्री ने लज्जित होकर किसान से अपने असंगत व्यवहार के लिये माफी माँगी। फिर तीनों खुशी-खुशी अंतरंग महल की ओर चल दिए।

बुद्धि ने मुस्कराकर खिसियाए भाग्य की ओर देखा।

सीख-जीवन में सफलता के लिये बुद्धि व भाग्य दोनों का मेल जरूरी है।

पृष्ठ 23 का शेष

अपना जीवन दूसरों के हित के लिये हो

अधिक परमात्मा के ध्यान में है, उससे भी ज्यादा आनन्द परमात्मा की प्राप्ति में हैं। परमात्मा की प्राप्ति प्रेम से होती है। उस परमेश्वर के लिये ही हमें जीना चाहिये। सोना, खाना, जीना और रोना सब परमात्मा के लिये ही होना चाहिये। ऐसे भाव से तुरन्त भगवान् मिलते हैं। जैसे प्रह्लाद ने भगवान के लिये जीवन बिताया, शबरी भीलनी ने भगवान के लिये अपना जीवन बिताया, इसी प्रकार हमें अपना जीवन भगवान के लिये बिताना चाहिये या सबको नारायण का रूप समझकर सबकी सेवा में बिताना चाहिये। भगवान ने कहा है -

यत्करोषि चदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्।।

(गीता 9/27)

हे अर्जुन! तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर -

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्त: परस्परम्।
कथयन्तश्च माँ नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।

(गीता 10/9)

भाव यह है जिनका मुझमें चित्त है, जिनका जीवन केवल मेरे लिये है, जो मेरे तत्त्व-रहस्य को जानने के लिये आपस में वार्तालाप करते हैं, मेरे नाम, रूप, गुण और प्रभाव का प्रचार करते हैं, इस प्रकार सारी इन्द्रियों से मेरे में ही रमण करते हैं, इस प्रकार के रमण से ही संतोष-लाभ करते हैं, ऐसे भक्तों को मैं वह बुद्धियोग देता हूँ, जिससे वे मेरे को प्राप्त हो जाते हैं।

यह भगवान का उपदेश है, इसलिये हमें ऐसे ही अपना समय बिताना चाहिये। ***- कल्याण से साभार***

अंत मति सो गति

– संकलित

एक बार नारद जी भगवान के पास गये और कहा कि भगवन्! बैकुण्ठ रिक्त पड़ा है। इतने बड़े बैकुण्ठ में आप अकेले रहते हैं, कुछ लोगों को यहाँ बसा लें तो कुछ चहल-पहल हो जाएगी। भगवान ने नारद जी से ही कहा कि आप किसी को लेकर आ जावें।

नारद जी मृत्युलोक में आए और एक सेठ के पास पहुँचे। नारदजी ने सेठ से कहा-"चलो सेठ जी! बैकुण्ठ ले चलता हूँ।" सेठ ने कहा-"क्यों नहीं भगवन, आप जैसे लेने आए हैं तो अवश्य चलूंगा, लेकिन मार्च क्लोजिंग चल रहा है, इससे निपट लूँ, फिर चलूंगा।" कुछ समय बाद नारद पुन: पहुँचे तो सेठ ने कहा-"भगवन! मार्च क्लोजिंग तो हो गया है लेकिन लड़का अमेरिका पढने गया है, लौट आए तो उसको काम संभलाकर चलें।" कुछ समय बाद नारद जी पुन: पहुँचे और सेठ जी के समाचार जाने। सेठ बोला,-"महाराज! लड़का जब जहाज से उतरा तब ही कुछ लोग रिश्ता लेकर आ गए। अब विवाह हो जाए तो चलें।" विवाह हो जाने के बाद नारद जी पुन: पहुँचे तो अब पोते का मुँह देखने की चाह प्रकट हो गई। अगली बार नारद जी आए तो पता चला कि सेठ जी तो भगवान को प्यारे हो गए।

नारद जी ने इधर-उधर नजर दौड़ाई तो देखा एक कुत्ता पूंछ हिलाता घूम रहा है और जूठे बर्तन चाट रहा है। नारद जी बोले-"अरे सेठ! यहाँ कहाँ भटक रहा है? क्यों जूठे बर्तन चाट रहा है, चल मेरे साथ।" कुत्ता बोला,-"भगवन्! बेटे-पोते अभी तक लापरवाह हैं, रात को घोड़े बेचकर सोते हैं, सुबह देर से उठते हैं। बड़ी मेहनत से इनके लिये धन कमाया है, रखवाली कर रहा हूँ। ये कुछ संभल जाएँ, तो चलें।" कुछ दिनों बाद नारद जी लौटे तो कुत्ता दिखाई नहीं दिया। परिवार वालों से पूछा तो बताया कि महाराज कुत्ता क्या था, पिता के समान रखवाली करता था। उसके मरने के बाद तो घर में चोरी हो गई। अब हमें तो सावधानी पूर्वक जाग-जागकर रखवाली के लिये रात बितानी पड़ती है।

नारद जी लगे ढूंढने तो पाया कि सेठ के खेतों में हल चला रहे अनेक बैलों की जोड़ियों में एक हट्टा-कट्टा बैल आगे-आगे चल रहा है। थकान के कारण पसीने से सराबोर है, हल के भार से कंधा सूज गया है। नारद जी ने पहचाना और कहा,-"सेठ जी अब क्या बाकी रह गया?" सेठ बोला-"भगवन! अन्य सब बैल नये हैं, आलसी हैं, मैं आगे जुतकर जल्दी-जल्दी चलता हूँ, तब ये मेरा अनुसरण करते हैं, इसलिए खेती ठीक हो जाए, तब चलेंगे।"

परिवार के लिये अधिक से अधिक कार्य करते-करते बैल बना सेठ मर गया। अब वह सांप बन गया और घर में पड़े धन की रखवाली के लिये कुंडली मारकर बैठ गया। घर में घूमता भी फिरे। नारद जी फिर आए तो घर में रखे उस धन की सुरक्षा की चिन्ता में सेठ बैकुण्ठ में चलने से फिर मुकर गया। नारद जी ने परिवार वालों को बुलाकर पूछा कि तुम्हारे घर में सांप रहता है क्या? परिवार वाले बोले-"महाराज! हमने तो नहीं देखा।" नारद जी ने बताया,-"वह देखो छोटे पोते के पलंग के नीचे फन फैलाए बैठा है।" घर में जिस सदस्य को जो मिला वो लेकर दौड़े और मारने लगे। नारद जी कहा,-"मुँह को छोड़कर शेष जगह मारो लेकिन मुँह पर मत मारना और पीटकर पेड़ पर लटका दो।"

कुछ समय बाद जब एकान्त हुआ तो नारद जी ने पूछा,-"सेठ अब क्या विचार है?" सांप बना सेठ बोला,-"भगवन! चार-चार जीवन इन लोगों के बारे में सोचते-सोचते बीत गए और अंत में इन लोगों ने मेरा यह हाल बनाया। यदि पहले ही इनके बारे में न सोचकर आपकी बात मानता तो इतना बड़ा धोखा न होता।" तब नारद जी ने कहा,-"सेठ तुम जीवन भर जिसका चिंतन करते रहे, वही तुम्हें उपलब्ध होता रहा। क्योंकि तुम्हारा शरीर छूटते समय तुम्हारी वही मति रहती थी, जो जीवनभर रही और इसीलिए उसी के अनुरूप नई स्थिति मिलती रही।"

यह दृष्टांत इस बात का सबूत है कि व्यक्ति जो जीवन भर करता है, उसी का अंत में भी स्मरण रहता है और गीता के अनुसार अंत में जैसी मति होती है, वैसी ही गति होती है। इसलिये ईश्वर को पाना है तो सदैव उसी का स्मरण बना रहना चाहिए। इसीलिए भगवान ने कहा-अर्जुन युद्ध कर और मेरा स्मरण कर।

(स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज की प्रवचन माला अमृतवाणी में आए दृष्टांत का संपादित अंश)

अपनी बात

निष्काम कर्मयोग की बात जब चलती है तो कई बार ऐसे प्रश्न भी आते हैं कि निष्काम भावना से कर्म करने पर क्या प्रगति रुक नहीं जाती? यहाँ विचार करना चाहिए कि प्रगति का क्या मतलब होता है। अगर प्रगति से मतलब वह है जो आज व्यक्ति सोचता है कि बहुत धन हो, बड़ा मकान हो, जायदाद हो, जमीन हो तो शायद-तो शायद थोड़ी रुकावट पड़ सकती है। लेकिन अगर प्रगति से अर्थ है कि शान्ति हो, आनन्द हो, प्रेम हो, जीवन में प्रकाश हो, ज्ञान हो तो निष्काम भावना से कोई रुकावट नहीं पड़ती बल्कि बड़ी गति मिलती है। इसलिए निर्भर इस बात पर करेगा कि हमारा प्रगति से अर्थ क्या है।

अगर प्रगति से हमारा मतलब उसी से है जो बाहर इकट्ठा होता है, तब तो शायद थोड़ी बाधा पड़ सकती है। लेकिन बाहर सब कुछ भी मिल जाए-सारी संपदा-हर प्रकार की संपदा-और भीतर एक भी किरण शान्ति की न फूटे तो वह भौतिक प्रगति व्यर्थ है। अगर हमने कभी शान्ति की किरण का अनुभव किया हो तो उसके बदले हम सब धन, सब दोलत, राज्य तक आसानी से छोड़ पाएंगे। एक छोटी-सी शान्ति की लहर के इस जगत का पूरा साम्राज्य भी समतुल नहीं है।

लेकिन हम प्रगति से एक ही मतलब लेते हैं-भौतिक सम्पन्नता। यह भी आवश्यक नहीं है कि जो निष्काम भाव से कर्म योजना में लगेगा वह अनिवार्य रूप से दीन और दरिद्र हो जाएगा। यह अर्थ नहीं है। क्योंकि मन शान्त हो तो दरिद्र होने की अनिवार्यता नहीं है। क्योंकि शान्त मन जिस दिशा में भी काम करेगा, ज्यादा कुशलतापूर्वक करेगा। धन भी कमायेगा तो ज्यादा कुशलता से कमायेगा। लेकिन उसके लिये धन कमाने का अर्थ चोरी नहीं हो सकेगा। शान्त मन के लिये तो धन कमाने का अर्थ कुशलता पूर्वक धन कमाना ही होगा, चोरी नहीं, धन निर्मित करना होगा।

शान्त मन हो तो आदमी जो भी करेगा, कुशलता पूर्वक कर्म होगा। उसके मित्र ज्यादा होंगे, उसकी कर्म कुशलता ज्यादा होगी, उसके पास शक्ति ज्यादा होगी, समझ ज्यादा होगी। इसलिए ऐसा अर्थ नहीं है कि निष्काम भावना से कर्मरत व्यक्ति अनिवार्य रूप से दरिद्र होगा। भीतरी तो समृद्धि होगी ही, लेकिन भीतरी समृद्धि बाहरी समृद्धि लाने का भी आधार बनती है, लेकिन बाहरी समृद्धि उसके लिये गौण होगी। भीतरी समृद्धि के रहते हुए, अर्थात् भीतरी समृद्धि की कीमत न चुकानी पड़े तो बाहरी समृद्धि भी आएगी। हाँ उस जगह अवश्य बाधा पड़ेगी जहाँ बाहरी समृद्धि कहेगी कि भीतरी शान्ति और आनन्द को छोड़ो तो मैं उपलब्ध होऊँगी। तब जो निष्काम कर्मी है, वह कहेगा तुम मत मिलो, यही तुम्हारी कृपा है, तुम जाओ भले ही पर भीतरी शान्ति तो रखूंगा ही।

जो दौड़ने को ही प्रगति मानते हैं-कहीं भी दौड़ना, बिना कहीं पहुँचे, इसी को जो प्रगति मानते हैं तो बात अलग है। पर अगर कहीं पहुँचना प्रगति है, तो फिर बात बिल्कुल अलग होगी। तेजी से इधर-उधर दौड़ते रहते हैं, भटकते रहते हैं, वे कहीं नहीं पहुँचते। लेकिन जो चाहे धीमे चलते हों, पर उद्देश्य की राह पर निष्काम भाव से चलते हों, तो वे भी पहुँच जाते हैं। इस ख्याल के साथ चलें, यही समझना है।

बाधाएँ सब अपनी जगह हैं। लेकिन निष्काम कर्म करने वाले व्यक्ति ने बाधाओं को स्वीकार करना बन्द कर दिया है। स्वीकृति होती है अपेक्षाओं से, प्रतिकूल होने पर। पर जब अपेक्षाएँ ही नहीं, समझ लिया कि फल पर मेरा अधिकार नहीं तो अब प्रतिकूलता रही ही नहीं। निष्काम कर्म की धारणा में बहने वाले व्यक्ति को सभी कुछ अनुकूल है। इसका यह मतलब नहीं है कि सभी कुछ अनुकूल बन गया है। असल में जो भी है, वह अनुकूल ही है क्योंकि प्रतिकूल को तय करने का अब उसके पास कोई भी तराजू नहीं है। न बाधा है, न विफलता है। सब बाधाएँ, सब विफलताएँ सकाम मन की निर्मितियाँ हैं। शान्ति, प्रकाश और ज्ञान के लिये निष्काम कर्म का कोई भी कदम व्यर्थ नहीं जाता है। छोटा-सा प्रयास भी व्यर्थ नहीं जाता, यह समझना जरूरी है। लेकिन इससे उल्टी बात भी समझ लेनी चाहिए कि सकाम कर्म का बड़े से बड़ा प्रयास भी व्यर्थ ही जाता है-उससे न शान्ति मिलती, न प्रकाश की किरण दिखती और न ज्ञान ही पैदा होता। समाज को वर्तमान स्थिति से उभारने के लिये लम्बे और अथक प्रयास की आवश्यकता है, मगर निष्काम भाव से यदि हम कार्यरत रहते हैं तो समाज में सुख-शान्ति अवतरित होगी ही।

*

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि	
01.	उ.प्र.शि.	18.05.2019 से 28.05.2019	गनोड़ा (बाँसवाड़ा)	– लिटिल एंजल्स सीनियर सैकण्ड्री स्कूल। शिविर स्थान होगा जो गनोड़ा में बेणेश्वर रोड़ स्थित कल्याणनगर में है। – जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, बाड़मेर आदि स्थानों से गनोड़ा के लिये बस हैं। – जयपुर से बांसवाड़ा के लिये एक बस वाया गनोड़ा भी है। – गुजरात से आने वाले सामलाजी होते हुए डुँगरपुर पहुँचें, वहाँ से गनोड़ा के लिये बस है। – ट्रेन से उदयपुर आकर वहाँ से गनोड़ा के लिये बस है। – गणवेश व आवश्यक सामग्री लेकर आएँ।
2.	उ.प्रा.शि. (बालिका)	31.05.2019 से 06.06.2019	पुष्कर (अजमेर)	– जयमल कोट पुष्कर। कम से कम 8वीं पास और पूर्व में शिविर की हुई बालिकाएँ ही आ सकती हैं। गणवेश लेकर आएँ।
3.	मिलन शिविर	07.06.2019 10.06.2019	बाड़मेर	– भारतीय ग्राम्य आनोकायन ट्रस्ट द्वारा संचालित आश्रम शिविर स्थान होगा। – आमंत्रित स्वयंसेवक ही आ सकेंगे। – आमंत्रित स्वयंसेवक पूरा शिविर न कर सकें तो कम-से-कम दो दिन के लिये आ सकते हैं।

दीपसिंह बेण्यांकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख
श्री क्षत्रिय युवक संघ

हर अवसर के समक्ष खड़े होकर हमें यह पता ही नहीं लगता कि उस अवसर ने हमारा क्या कर डाला। लेकिन हर अवसर वह सब कुछ कर डालता है, जिसे वह करने के लिये आया था। चाहे उसकी पहचान हमें बहुत बाद ही प्रसन्नता या पश्चाताप प्रदान करने वाली बने।

– पू. तनसिंहजी

अप्रेल, सन् 2019
वर्ष : 56, अंक : 04

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर-302012
दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह